सम्मेलन-पत्रिका

[त्रैमासिक]

[भाग—३८, संख्या—४]
आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, सम्वत् २००९

सम्पादक
श्रीरामनाथ 'सुमन'

वार्षिक ८) }
छात्रों से ६) }

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

{ एक प्रति
{ दो रुपया

विषय-सूची

डॉ० सुधीन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

तुलसी का भक्ति-दर्शन

तुलसीदास, सूरदास, कबीर और मीरा हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों में ऊँचे स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने जिस काव्यनिधि का दान हिन्दी भाषा को दिया है उसे भाव-लोक और विषयक्षेत्र की दृष्टि से भक्ति-काव्य कहा जाता है। भक्ति के साथ सगुण और साकार ईश्वर की उपासना का अर्थ जुड़ा हुआ है इसलिए निर्गुण और निराकार की उपासना को इसमें सम्मिलित करना आपत्तिजनक हो सकता है। इस दृष्टि से भक्ति-काव्य के स्थान पर धार्मिक काव्य का प्रयोग करना अधिक न्यायसंगत है। धार्मिक काव्य में निर्गुण और सगुण दोनों रूपों के ईश्वर की निराकार और साकार उपासना का विवेचन, अनुशीलन और निरूपण करनेवाली कविता का समावेश हो जाता है। धार्मिक कविता के विशाल क्रोड़ में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की कविता समाविष्ट हो जाती है।

तुलसीदास एक भक्त थे, सगुण ईश्वर के उपासक। वे निर्गुण और निराकार ईश्वर की उपासना करनेवाले 'सन्त' नहीं थे जैसे कबीर और जायसी। इस प्रकार तुलसीदास उस परम्परा में हैं जो निर्गुण सम्प्रदाय की परम्परा से भिन्न है। वे राम के भक्त थे; उनका राम परब्रह्म परमेश्वर था, अवतार था। यह ठीक है कि 'राम' शब्द हिन्दी के धार्मिक काव्य में भिन्न-भिन्न अर्थ और संसर्गों (associations) का सूचक है—कबीर के आराध्य भी राम थे और तुलसीदास के आराध्य भी। परन्तु जहाँ कबीर के राम सब से ऊँचे स्थान के अधिकारी निर्गुण ब्रह्म हैं वहाँ तुलसी के राम निर्गुण और सगुण रूपधारी परब्रह्म परमेश्वर के साकार रूप वा अवतार हैं। दशरथ पुत्र (दाशरथि) राम में उन्होंने अपने राम की यह कल्पना, भावना और धारणा केंद्रित कर दी थी। उसी ब्रह्म का पार्थिव रूप राम किस प्रकार लोक-लीला करता है और भक्तों के मन को लुभाता है तथा साथ ही लोकमर्यादा और लोकनीति का पालन और प्रतिष्ठा करता है, यह दिखाना तुलसीदास का उद्देश्य था।

तुलसी-दर्शन

तुलसी के भगवान् निर्गुण और सगुण, अखण्ड और अनन्त, अरूप और अनाम, अज और अनादि सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं।

एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानन्द परधामा॥
अगुण अखण्ड अनन्त अनादी।

वह 'चिदानन्द निरुपाधि अनूपा' है।

उनकी दृष्टि मे निर्गुण और सगुण परमेश्वर में कोई मौलिक और तात्त्विक भेद नही है—

सगुणहि अगुणहि नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुराण बुध बेदा ।।

उन्होंने राम को निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप अर्थात् अवतार माना है और इस प्रकार राम का निर्गुण ब्रह्म से तादात्म्य स्वीकृत किया है ;—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा।।

तथा—

तात राम कहँ नर जनि मानहु।
निरगुन ब्रह्म अजित अज जानहु।।

प्रश्न यह है कि अनाम और अरूप निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म कैसे होता है—गोस्वामीजी का उत्तर है कि रूप धारण कर के—

फूले कमल सोह सर कैसे ।
निरगुन ब्रह्म सगुन भये जैसे।।

निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म क्यों होता है इसका कारण वे भक्त का प्रेम बतलाते है—

अगुण अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।।

परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि निर्गुण और सगुण भिन्न है। जैसे जल और हिम-उपल भिन्न नही है—

जो गुण रहित सगुण सोइ कैसे।
जल हिम-उपल विलग नहि जैसे।

सूरदास की भांति वे भी मानते थे कि निर्गुण ब्रह्म की कल्पना सगुण के द्वारा ही की जा सकती है। सगुण के माध्यम से ध्यान और धारणा किये बिना ब्रह्म के निर्गुण-रूप की कल्पना और भावना होना असम्भव है—

निरगुण कहें जो सगुण बिन
सो गुरु तुलसीदास।

इस प्रकार ब्रह्म अवतार के रूप में सगुण ब्रह्म हो जाता है और राम को तुलसीदास ने इसी रूप में देखा है—

जय राम रूप अनूप निरगुन
सगुन गुन प्रेरक सही।

इस प्रकार राम को जनसाधारण की भाषा में निर्गुण ब्रह्म का सगुण अवतार कहा जा सकता है, यही उनका 'अवतारवाद' है। गीता के 'यदा यदाहि धर्मस्य' की भाँति ही तुलसीदास भी कहते हैं—

जब जब होय धरम कै हानी—
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

इस प्रकार तुलसीदास अवतारवाद के विश्वासी है।

तुलसी के आराध्य-राम

तुलसीदास के राम समस्त विश्व में रमे हुए अर्थात् विश्वरूप है—जिनका सिर वैकुण्ठ में है, चरण पाताल में और शेष अंग अन्य लोकों में। ऐसे विराट् रूप के दर्शन तुलसी ने माता कौशल्या को कराये हैं—

देखरावा मातहिं निज
अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम रोम प्रति लागे—
कोटि कोटि ब्रहमण्ड ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देव उसी परब्रह्म के अंश हैं—

सम्भु विरंचि विष्णु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस ते नाना ॥

वह तीनों लोको के कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता है—

जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की।

इस प्रभु के अनेक नाम हैं, परंतु 'राम' ही उनकी सर्वश्रेष्ठ संज्ञा है—

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका।
श्रुति कह अधिक एक ते एका ॥
राम सकल नामन ते अधिका।

तुलसीदास के मत में वेदों और उपनिषदों के मत का सार-संकलन हुआ है। सृष्टि को उन्होंने 'सत, रज, तम तीन गुणों वाली—त्रिगुणात्मक' माना है और उसकी रचना परब्रह्म ने ही की है—

जेहि सृष्टि उपाई, विविध बनाई, संग सहाय न दूजा।

जीव ब्रह्म का ही अंश है परंतु माया के कारण वह ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है—इस दार्शनिक अथवा तात्विक सत्य को पहचान लेने को उन्होंने आत्मबोध अथवा आत्मज्ञान कहा है।

ज्ञानियो के अनुसार तो ज्ञानमार्ग के द्वारा ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, परंतु तुलसीदास ज्ञानमार्गी नही थे, वे तो भक्तिमार्गी थे। भक्ति सगुण ईश्वर की उपासना का नाम है। तुलसीदास के अनुसार आत्मबोध भी अपने आप नही हो सकता, उसके लिए भी रामरूप परमेश्वर की कृपा चाहिए। जब राम जीव पर प्रसन्न होते है, तभी जीव में यह आत्मबोध उनकी भक्ति की प्रेरणा के रूप में होता है। जब तक जीव पर माया का आवरण रहता है तब तक मिथ्या संसार भी सत्यवत् प्रतीत होता है और उसमें यह जीव उसी प्रकार फँसा रहता है जिस प्रकार पिजड़े में तोता; परंतु इतना ज्ञान होने पर भी मुक्ति नही हो पाती—

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लग नहिं कृपा तुम्हारी।
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गुसाईं।
बिन बांधे निज हठ सठ बरबस परयो कीर की नाईं।

ससार से मुक्ति पाने के वाह्याचार और कर्मकाण्डपूर्ण उपाय करने पर भी अज्ञानी जीव को मुक्ति नही मिलती। ज्ञान के साथ जब भक्ति का समन्वय होता है तब अपने आप मुक्ति का मार्ग मिल जाता है। बिना आत्मबोध हुए मुक्ति के उपाय करना उसी प्रकार है-- जिस प्रकार सपने में ब्रह्म-हत्या का दोष लगने पर करोड़ो अश्वमेध करना—

सपने नृप कहँ घटै विप्र बध
बिकल फिरै अघ लागे।
बाजिमेध सत कोटि करै
नहिं मुक्ति होय बिनु जागे।

जीव का जागरण अथवा ज्ञान ही माया के भ्रम को दूर करने का पहिला साधन है, इसे तुलसीदास ने भिन्न-भिन्न दृष्टान्तो में व्यजित किया है। कभी वे घृत से भरे कड़ाह में दिखाई देने वाले प्रतिबिम्ब को मिटाने का और कभी वृक्ष की कोटर में बसे हुए पक्षी को मारने का और कभी वल्मीक के भीतर घुसे हुए साँप को मारने का दृष्टान्त देकर, अभ्यन्तर ग्रन्थि टूटे बिना वाह्याचार की व्यर्थता सिद्ध करते है।

इस अविद्या या माया को ज्ञान ही मिटा सकता है परतु वह भक्तहितकारी दयालु राम की कृपा के बिना उत्पन्न नही हो सकता। सैद्धान्तिक या दार्शनिक ज्ञान को उन्होंने उपहास की दृष्टि से देखा है, इसे केवल वाक्य ज्ञान कहा है। वाक्यज्ञान में अत्यन्त कुशल व्यक्ति भी संसार से मुक्ति नही पा सकता। कही रात्रि में अँधेरे घर के बीच दीपक की बात करने मात्र से अँधेरा दूर हुआ है?

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित मोह न छूटे माया।
वाक्यज्ञान अत्यन्त निपुन भवपार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई।

यह है तुलसीदास का मत। इस मत का प्रतिपादन उन्होंने कई दृष्टान्तों से किया है। कल्पवृक्ष और कामधेनु के चित्र लिख देने से दीन-दुःखी को भोजन नही मिल सकता और न वह दिनरात षट्रस व्यंजनो के वर्णन से ही मिल सकता है। यही सिद्धान्त उन्होंने अन्यत्र भी प्रतिपादित किया है—

बिनु सत संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई॥

अन्यत्र भी उन्होंने लिखा है—

तुलसिदास हरि गुरु करुणा बिन विमल विवेक न होई।
बिनु विवेक संसार घोर निधि पार न पावइ कोई।

भक्ति-पद्धति

विनय पत्रिका में एक भक्त की विनयशीलता और आत्मनिवेदनपूर्ण भक्तिभावना अनेक पदो मे निवेदित हुई है। विनय के लिए आवश्यक तत्त्व है—

१ दीनता
२ निरभिमानता
३ भर्त्सना
४ भयदर्शन
५ आश्वासन
६ मनोराज्य
७ विचारणा

जब तक भक्त दीन और निरभिमान नहीं होता तब तक उसमे समर्पण का भाव नही बनता; जब तक वह आत्मभर्त्सना नही करता तथा सांसारिक तापो से भय-दर्शन नही करता तब तक संसार से विरक्ति नही होती। जब तक मन को भगवान् की कृपा का आश्वासन नहीं होता तब तक भक्ति में निष्ठा नहीं आती और जब तक मनोराज्य और विचारणा नही होती तबतक भक्त आत्मसाधना के कल्याण-मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता।

काहे ते हरि मोहिं बिसारयो
है प्रभु मेरो ही सब दोसु

में दीनता, निरभिमानता व्यक्त हुई है—

केहि बिधि देहुं नाथहि खोटि

में दीनता—

'राम कहत चलु, राम कहत चलु'

पद में भय-प्रदर्शन किया गया है—तो

'ऐसी मूढ़ता या मन की', 'लाजु न आवत दास कहावत', 'मन पछितैहं अवसर बीते', 'जो पै रहनि राम सो नाहीं'

में भर्त्सना व्यक्त हुई है।

१ ऐसे राम दीन हितकारी
२ रामनाम के जपे जाय जिय की जरनि
३ एक सनेही साथ लो केवल कौशलपाल
४ नाहि न आवत आन भरोसो

मे 'आश्वासन' प्रकट हुआ है और

कबहुंक हौं यहि रहनि रहोंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाय गहौंगो।
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न कहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन परगुन नहिं दोस कहौंगो।
परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि भगति लहौंगो।

मे मनोराज्य प्रकट हुआ है।

'केशव कहि न जाय का कहिये' जैसे पद विचारणा के उदाहरण है।

समस्त 'विनयपत्रिका' मे आराध्य के प्रति एकान्त आत्मसमर्पण तो स्थायीभाव ही है। 'विनयपत्रिका' मे सामान्य अज्ञानी जीव की सांसारिक आसक्ति दशा मे लेकर राम के पद मे अनुरक्ति की स्थिति तक की यात्रा है—उसमें तुलसी की भक्ति-पद्धति का क्रम सूत्ररूप से अनुस्यूत है।

जड़ जीव को जो देह-गेह के नेह में जकड़ा हुआ है—संसार की यामिनी से जागना चाहिए

जागु जागु जीव जड़ जो है जग जामिनी।
देह गेह नेह जानि जैसे घनदामिनी।

जगाने के लिए भी चतुर जीव को जानकीश की कृपा आ गई है—

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव
जागि त्यागि मूढ़तानुराग श्री हरे।

इस प्रकार विनय के आवश्यक तत्त्वों के अनुसार कवि ने क्रमशः दीनता, निरभिमानता, आत्म-समर्पण, भयदर्शन और आवश्वासन की भावनाएँ व्यक्त की हैं और वह राम को आराध्य मान कर उसकी आराधना के राशि-राशि गीत निवेदित करता है।

इस प्रकार वह उस मधुर स्थिति की कल्पना करने लगता है जब वह राम का सच्चा भक्त होकर जीवन को एक ऊँचे आदर्श पर ढाल सकेगा। अपने भगवान् के प्रति की हुई यह विनयावली कवि की दृष्टि में उसके दरबार में दी हुई विनयपत्रिका हो जाती है।

'विनयपत्रिका' में शान्त रस और भक्ति रस का ही राज्य है; अन्य सब भाव तो इन्हीं के संचारी बन कर आये हैं। तुलसी का तत्त्वज्ञान अथवा सिद्धान्त उसमें पद-पद पर ध्वनित और मुखरित हुआ है।

शान्त रस में स्थायी भाव निर्वेद और शम् होता है। 'निर्वेद' का अर्थ है सांसारिक वस्तुओं से विरति और वैराग्य, अतः इसमें सांसारिक मोह और माया की निन्दा की उक्तियाँ आती हैं तथा मन को डराने-धमकाने और फटकारने की उक्तियां भी आती हैं। और शम् का अर्थ है दुःख-सुख में समभाव और विकारहीनता। यह चित्त की एक स्थिति है जो विरति की अग्रिम परिणति है। राम भक्ति की गङ्गा को छोड़ कर विषय-वासना के ओस-कण से प्यास बुझाने वाले मूढ़ मन को यह कवि फटकारता है—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओस कन की।

संसार के सभी प्राणियों से, भले ही वे सुत-वनिता ही क्यों न हों, नेह न करने की चेतावनी ही वह मन को देता है—

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते।
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली तें।
सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबही तें।
अंतहुँ तोहि तजेंगे पामर तू न तजै अबहीं तें।

सूर ने भी इसी प्रकार कहा था—

भाई बन्धु अरु कुटुम्ब कबीला
बिनु गोपाल कोउ नहिं अपना।

कवि देखता है कि बिना ईश्वर के चरण के, उसके उद्धार का कोई मार्ग नहीं क्योंकि वह माया के वश में विवश है—माया की प्रतिमूर्ति इस संसार की भर्त्सना भक्त कवियों ने अपना पहला धर्म माना है क्योंकि इसके बिना निर्वेद नहीं आ सकता।

भक्ति की साधना में विरति और वैराग्य के पश्चात् भगवान् के प्रति अनुरक्ति, आसक्ति और निष्ठा की भावना आती है। यह अनुरक्ति, आसक्ति आराध्य के प्रति शील, सौंदर्य अथवा शक्ति के साक्षात्कार द्वारा ही आती है। गोस्वामीजी ने अपने राम में परम शील का दर्शन किया है और उसके आनन्द को इस प्रकार व्यक्त किया है—

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न तन मन पुलक नयन जल, सो नर खेहर खाउ।

ज्यों-ज्यों आराध्य के इस चरम महत्त्व की प्रतीति होती जाती है त्यों-त्यों भक्त का मन विनीत, विनम्र और समर्पित होता जाता है। एक की गुरुता में ही दूसरे की लघुता है—

राम सों बड़ो है कौन—मोसों कौन छोटो ?
राम सो खरो है कौन, मोसो कौन खोटो ?

भक्त को इसी लघुता में चरम आनन्द, परम आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह अधम से अधम, नीच से नीच बन कर मानो आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव ही प्रकट करता है इसीलिए आत्मनिन्दा उसका एक बड़ा बल हो जाता है—

जानत हूँ निज पाप जलद जिय
जल सीकर सम सुनत लहौं।

भक्त तुलसीदास की आराध्य में आसक्ति चातक और मेघ की आसक्ति है। चातक को तुलसी ने अनुरक्ति और आसक्ति का उच्चतम प्रतीक माना है, जिसकी प्रथम अवस्था यह है—

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास।

इस आसक्ति का कोई स्वार्थमय उद्देश्य और लक्ष्य नहीं है, वह तो स्वयं ही अपना साध्य है।

आराधक प्रेमी या भक्त के आदर्श इस चातक में ही तुलसी ने भक्त की दीनता और याचना देखी है—

तीन लोक तिहु काल जस, चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता, सुनी दूसरे नाथ॥

आसक्ति की अटलता देखी है—

चातक तुलसी के मते, स्वाति पिये ना पानि।
प्रेम-तृषा बाढ़ति भली, घटें घटगी आनि॥

प्रेम की अनन्यता देखी है—

भक्ति में जो प्रेम होता है वह प्रतिदान नहीं माँगता और न प्रेमपात्र के उत्पीड़न से ही विचलित होता है—

बरषि परुष पाहन पवन, पंख करौ टूक टूक।
तुलसी परी न चाहिये, चतुर चातकहि चूक॥

भक्त तुलसी का यह प्रेम आत्मरंजक ही नहीं, लोकरंजक है, आत्महिताय नहीं, लोकहिताय है—

जीव चराचर जहँ लगि, है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह॥

इस प्रकार चातक तुलसी के अनन्य प्रेम का एक प्रतीक है।

तुलसीदासजी एक समन्वयवादी विचारक थे। ज्ञान और चिन्तन ने जितने भिन्न-भिन्न मार्ग निकाले, वे अन्त में जाने तो एक ही दिशा को हैं परन्तु एक ही मार्ग को ठीक कह कर दूसरे को बुरा बताना एक हठाग्रह है। इसी हठाग्रह के कारण भिन्न-भिन्न तर्क-वितर्क, वाग्जाल और सामान्य मानव के लिए भ्रान्तियाँ उपस्थित हो गई हैं। यों तो अपनी-अपनी दृष्टि में सभी वाद ठीक हैं। चाहे वह अद्वैतवाद हो, जिसके अनुसार ब्रह्म सत्य और संसार मिथ्या है (ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या), चाहे वह विशिष्टाद्वैतवाद हो, जिसके अनुसार जीव और ब्रह्म तथा जगत् में अद्वैतता है, ब्रह्म में चेतन तत्त्व है, पर जीव मे अचित् या जड़ तत्त्व। तुलसीदास ने इन दोनों का समन्वय किया है।

अद्वैतवाद (मायावाद) की सांकेतिक पदावली (मृगवारि, जेवरी को साँप, धुआँ कैसे धौरहर) उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करती है; परन्तु उनका जीव और परमात्मा को अंग और अंगी मानना विशिष्टाद्वैतवादी सिद्ध करता है।

वास्तव में तो उन्होंने दोनों का समन्वय ही किया है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशी॥
सो माया बस भयो गुसाईं—
बँध्यो कीट मरकट की नाईं॥

परन्तु सामान्य मानव के लिए तो गोस्वामीजी ने इन भ्रमों और भ्रान्तियों से दूर रहने का ही उपदेश दिया है—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ
जुगल प्रबल कोउ मानै—
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम
सो आपन पहिचानै।

श्री रामचन्द्र गौड़, एम०ए०, साहित्यरत्न

वृहत्तर भारत की सांस्कृतिक रूप-रेखा

प्रागैतिहासिक काल से भारत का सम्बन्ध विदेशों से रहा है। प्रस्तर युग में भी इस सांस्कृतिक-प्रसार के प्रमाण मिलते है। हरप्पा और मोहेनजोदड़ो की सभ्यता के विकसित होने के बहुत पूर्व ही भारतीय बहुत अधिक संख्या में जल और स्थल-मार्ग से पश्चिमी, दक्षिणी और मध्य एशिया में जाकर बस चुके थे। यह बात निश्चित है कि अत्यन्त प्राचीन काल से भारत अन्य देशों की भांति अपनी भौगोलिक सीमा के भीतर ही सीमित न रह कर शेष विश्व से सदैव सम्बन्ध स्थापित किये रहा।

अत्यन्त प्राचीन काल से ही हमारा व्यापारिक सम्बन्ध बेबीलोनिया, सीरिया, मिश्र, आदि देशों से रहा है। पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने इन देशो में ऐसी अनेक वस्तुएं प्राप्त की है जिनका प्रयोग भारत मे होता है या जिनका नाम भारतीय है। प्रथम शताब्दी के एक ग्रीक वणिक् ने भारत तक समुद्री यात्रा की थी। उसने अपनी पुस्तक 'दी पेरिप्लस आंव द एरिथिरीयन सी' में भारत के वैभव, व्यापारिक सामग्रियों और मार्गों का विस्तृत वर्णन किया है। । इस बात की पुष्टि 'प्लिनी' नामक वणिक् ने भी की है। उन दिनों रोम निवासी भारत की वस्तुओं के लिए यहाँ एक लाख मुद्राएं भेजा करते थे। भारत मे रोमन सिक्के पाये गये है उनसे यह बात निश्चित हो जाती है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर भारत से पश्चिमी देशों मे अनेक मिशन गये है। २६ ई० पूर्व मे एक ऐसा ही मिशन पाण्ड्य नरेश ने रोम के राजा आगस्टस के पास भेजा था।

यह बात सभी लोग जानते है कि सांस्कृतिक प्रचार व्यापार और आवागमन द्वारा ही होते है। तदनुसार अशोक ने अपने धर्मप्रचारको को पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफरीका और दक्षिण-पूर्व यूरोप मे भेजा था। यद्यपि हमारे पास निश्चित प्रमाण नहीं है तथापि यह निर्विवाद है कि मुसलमान-धर्म के अभ्युदय के पूर्व भारतीय धर्म और संस्कृति का इन-इन देशो में पूर्ण प्रसार हो चुका था। इसके प्रमाण अब भी वहाँ मिलते है। यह बात अवश्य है कि भारत को भी इन देशो के संपर्क मे लाभ हुआ था। ग्रीक और यूनानी ज्योतिष, कला और सिक्को का अमूल्य प्रभाव इसके प्रमाण हैं। अरब जातियाँ भारतीय व्यापारिक वस्तुओं के साथ-साथ भारतीय संस्कृति भी लेती गयी और उनके द्वारा उसका प्रसार पश्चिमी देशों में हुआ। भारतीय औषधियाँ और दशमलव भिन्न का गणित में प्रयोग भारतीयों की ही देन है और यह आज अरबो द्वारा प्रसारित होकर संसार की सम्पत्ति हो गयी है।

भारतीय धर्म प्रचारकों के तथा कुशाण जाति के राजनीतिक प्रभाव के कारण मध्य एशिया में तो हमारी संस्कृति का एक प्रकार से बोलबाला रहा है। भौगोलिक परिवर्त्तन ने आज इस कल्पना को भी दुरूह-सा कर दिया है कि आज के गोबी मरुस्थल के इन बालुका कणों के नीचे प्राचीन भारतीय उपनिवेश दबे पड़े हैं। परन्तु 'सर आरेल स्टीन' के अदम्य उत्साह ने इस कल्पना को सत्य प्रमाणित कर दिया है। खुदाई द्वारा अनेक स्तूप, विहार, बौद्ध और ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ तथा प्रभूत मात्रा में साहित्य प्राप्त हुए हैं। स्टीन महोदय ने स्वयं अपनी 'प्राचीन खोतान' की भूमिका में लिखा है कि जिन दिनों मे इन खुदाइयों के बीच था, मैंने अनुभव किया था कि मै पंजाब के किसी नगर में उपस्थित हूँ। इस प्रकार भारतीय सभ्यता की अमिट छाप वहाँ पर थी। इतना ही नहीं, हुएनसांग ने अपने सातवीं शताब्दी के भ्रमण का वर्णन करते हुए इन भागो मे बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति के पूर्ण प्रभाव को स्वीकार किया है।

मध्य एशिया से यह धर्म चीन गया। वहाँ भारतीय सभ्यता और बौद्धधर्म का क्या प्रभाव पड़ा, यह बताने की आवश्यकता नही। झुड के झुड चीनी यात्री जल और स्थल-मार्गों से भारत आये। वे अपने साथ असंख्य धार्मिक पुस्तकें और प्रस्तर मूर्तियाँ ले गये। आज भी चीनी भारतीय पण्डितों का इसीलिए स्वागत करते है और उनसे उन जटिल ग्रन्थों के अनुवाद में सहायता लेते हैं। इस सम्बन्ध में कितने ही भारतीय वहाँ जा बसे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि आज भी चीनी भाषा मे बौद्ध-धर्म के कितने ही ऐसे अनुवाद मिलते है जिनके मूल ग्रन्थों का पता लगाना भी भारत में असम्भव है। चीन से बौद्ध-धर्म कोरिया और वहाँ से जापान गया। जापान आज भी बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र है।

भारत के पड़ोसी देशो पर जब हम दृष्टि डालते है तो वे आज भारत से काफी भिन्न-से लगते हैं। परन्तु कुछ ही सौ वर्ष पूर्व वे भारत के ही अंग रहे हैं। नैपाल का इतिहास तो भारत के इतिहास का अग मात्र है। प्राचीन काल में तिब्बत भी भारत से अलग न था। तिब्बत होकर बराबर ही व्यापारी लोग चीन से नैपाल और भारत आया करते थे। सातवीं शताब्दी मे तिब्बत के राजा 'श्रांग-जैन-गैम्पो' ने चीन और नैपाल की राजकुमारियों से विवाह किया। इन दोनो पत्नियो के प्रभाव से वह बौद्ध हुआ। नये धर्म के साथ-साथ उसने भारतीय लिपि का जो उस समय कुस्तन (वर्त्तमान खोतान) मे प्रचलित थी, प्रचार किया। फिर धर्म-प्रचार की दृष्टि से अनेक भारतीय पण्डित तिब्बत गये तथा अनेक धर्म-जिज्ञासु तिब्बत से भारत आये और यहाँ नालन्दा तथा विक्रमशिला के बौद्धविहारो मे धार्मिक दीक्षा ग्रहण की। महापण्डित अतीश दीपंकर ने ग्यारहवी शताब्दी में नयपाल राजा के समय मे तिब्बत की यात्रा की थी। आज भी तिब्बती उनको अपना सबसे बड़ा गुरु मानते हैं। सैकडों बौद्ध पुस्तकों का अनुवाद तिब्बती भाषा मे हुआ जिनमें तञ्जूर और कञ्जूर के नाम उल्लेखनीय हैं।

परन्तु बृहत्तर भारत का प्रमुख इतिहास बंगाल की खाड़ी के पार पूर्वी द्वीप समहों और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में रहा है। अन्य देशो की भाँति अर्थलिप्सा ही भारतीयों को भी उधर खीच ले गयी। उन प्रदेशों के मसालों पर आदिजातियों का एकाधिकार था। भारतीयों ने उसे धन का कोष समझा और उसका नाम 'स्वर्णद्वीप' अथवा 'स्वर्णभूमि' रख दिया। भारतीयों के उत्साह के कारण का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वहाँ की सम्पत्ति के लोभ का संवरण न कर सकने के कारण ही नवी और दशवीं शताब्दियों में अरब निवासी तथा पन्द्रहवी तथा सोलहवी शताब्दियों में यूरोपीय जातियों ने वहाँ अधिकार जमाना चाहा था परन्तु भारतीय केवल धन के ही लालच मे वहाँ नहीं गये अपितु बौद्धधर्म के प्रचार की भावना, जनवृद्धि, राजनीतिक उथल-पुथल तथा क्षत्रिय राजाओं की साहसिक क्रिया-शीलता भी भारतीयो को इन द्वीपों की ओर ले गयी और वे वहाँ जाकर बस गये। वहाँ की जातियो पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ा और कालान्तर में सब एक दूसरे से घुल-मिल गयी। उन जातियों ने भारतीय वेशभूषा, धर्म, भाषा कला आदि सभी को अपना लिया। कालान्तर में इन द्वीपों मे भारतीय उपनिवेशो की स्थापना हुई। इतना अवश्य है कि इन उपनिवेशों का मूल कारण राजनीतिक नही अपितु व्यापारिक तथा सांस्कृतिक रहा है। हमने तलवार के स्थानपर सांस्कृतिक विजय द्वारा ही अपने उपनिवेशों की नींव डाली थी।

इन उपनिवेशो की स्थापना के सम्बन्ध में जो साहसिक यात्राए की गयी थी उनका प्रमाण हमें उस समय के साहित्य से प्राप्त होता है। कथासरित्सागर और जातक कथाओ मे कहानियों के रूप मे भारतीय समुद्री यात्रा का विशद वर्णन है। इन द्वीपों में पाये गये अनेक संस्कृत लेख तथा मन्दिरो के खंडहर आज भी हमारी सांस्कृतिक विजय की कहानी कह रहे है। आज भी इन द्वीपों में अनेक कहानियाँ प्रचलित है जो भारतीय इतिहास की दृष्टि मे अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भले ही इन कहानियो का आवरण गल्प और कल्पना की कोटि मे आंका जाय, परन्तु उनकी पृष्ठभूमि अवश्य ही काल्पनिक नही है। इस स्थल पर दो एक उदाहरण अनुपयुक्त न होंगे।

विदेह का एक राजा युद्ध मे मार डाला गया था। उसकी विधवा पत्नी अपने कोष के साथ चम्पा (भागलपुर) भाग कर चली गयी। जब उसका पुत्र बडा हुआ तब उसने अपनी माता से कोष का धन विदेश जाने तथा शक्ति प्राप्त करने के लिए माँगा। धन प्राप्त कर व्यापारियो के पोत द्वारा वह स्वर्णभूमि गया। अन्त मे अनेक कठिनाइयो को पार करते हुए उसने सैन्य-शक्ति इकट्ठा कर के मिथिला पर अधिकार कर लिया।

दूसरी कथा सानुदास की यात्रा से सम्बन्धित है। वृहत् कथा में इसका वर्णन इस प्रकार है। सानुदास ने आचेर नामक समुद्री यात्री के साथ स्वर्णभूमि के लिए पोत द्वारा प्रस्थान किया। समुद्र-मार्ग से जाते हुए एक पर्वत के निकट बेतों (वेत्रपथ) के सहारे एक भूमिखंड को पार करना पड़ा। वहां से वे एक ऐसे प्रायद्वीप पर पहुँचे जहाँ की नदी में प्रत्येक वस्तु गिरते ही पत्थर हो जाती थी। नदी के ऊपर लटकने हुए बासों को पकड़ कर उन्होंने नदी पार की। इस

प्रकार 'वंशपथ' को पार कर वे अन्धकारपूर्ण एक घाटी में पहुँचे। प्रकाश के लिए उन्होंने किसी प्रकार भीगी लकड़ियाँ जलाईं जिसे देख कर कुछ किरात वहाँ आये। यात्रियों ने उनसे बकरियां ली और उनकी सहायता से उस 'अजापथ' को पार किया। आगे चल कर एक दूसरे दल से उनका युद्ध भी हुआ। किसी प्रकार वे आगे बढ़ते गये। फिर अचेर की सलाह से सब ने अपनी बकरियों को मार कर उनकी खालें इस प्रकार ओढ ली कि वे माँस के टुकड़े मालूम होने लगे। भयंकर पक्षी उन्हे लेकर उड़ गये। औरों का क्या हुआ हमें नही मालूम, परन्तु पक्षियों के आपस के युद्ध के कारण सानुदास छूट कर एक घने जंगल की झील में गिर पड़ा। वहाँ से निकल कर वह एक विचित्र देश में पहुँचा जहाँ की नदियों के किनारे बालू के स्थान पर स्वर्ण-कण बिखरे थे। यही स्वर्णभूमि थी।

इस प्रकार इन कहानियों में अनेक भयंकर मार्गों का वर्णन आता है जिनके आधार पर यात्रियों की भयंकर यात्राओं का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। 'फाहियान' ने भी इसी प्रकार की भयंकर यात्रा का वर्णन किया है। वह जब भारत से चीन वापस जा रहा था तो दो सौ यात्रियो से लदी उसकी नाव तूफान मे फँस गई। किसी प्रकार मृत्यु के मुँह से निकल कर वह लगभग ९० दिनों मे यवद्वीप (जावा) पहुंचा था।

इस प्रकार की कहानियों तथा अन्य अनेक उदाहरणों से प्राचीन भारतीयों के अदम्य व्यापारिक साहस का परिचय मिलता है। इन कथाओं से पता चलता है कि साहसी एवं शक्तिशाली क्षत्रियों ने ही इन दूर द्वीपों मे हिन्दू-उपनिवेशों की नींव डाली थी। इन प्रदेशों के दूसरी शताब्दी के साहित्य में हमें अनेक ऐसे राज्य और राजाओं के नाम मिलते हैं जो विशुद्ध भारतीय हैं। उनका धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज, भाषा और लिपि सभी भारतीय है। दूसरी एवं पाँचवी शताब्दी के मध्य में ऐसे भारतीय औपनिवेशिक राज्यों की स्थापना कम्बूज, एनम, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियो आदि द्वीपों में हो चुकी थी। इन राज्यों का इतिहास हमे चीनी साहित्य एवं संस्कृत के शिला-लेखों द्वारा मिलता है। उन दिनों ब्राह्मण-धर्म विशेषकर शैव-शाखा की विशेष उन्नति हो रही थी यद्यपि बौद्ध-धर्म भी प्रगति पर था। भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव वहाँ की मूल जातियों पर पड़ा और लगभग एक हजार वर्ष तक हिन्दू-सस्कृति का ही वहाँ बोलबाला रहा। यहाँ तक कि शताब्दियों बाद जब भारत में हिन्दू-राज्य का पतन हो गया, इन द्वीपों में हिन्दू-साम्राज्य बना रहा। तत्कालीन राज्यों मे चम्पा और कम्बूज अधिक शक्तिशाली थे। इनकी शक्ति का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि विख्यात मुगल सरदार कुबलाई खाँ भी उनके द्वारा पराजित हुआ था। इस प्रकार तेरह शताब्दियों तक (१५०-१४७१ ई०) हिन्दू शक्ति का ही बोलबाला रहा। इन उपनिवेशों की भूमि भव्य मन्दिरों तथा अन्य कलापूर्ण स्तूपों एवं मूर्तियों आदि से भरी पड़ी थी।

हमारे इन उपनिवेशों की राजनैतिक शक्ति का आरम्भ निश्चित रूप से कब से हुआ यह अब भी अज्ञात है तथापि कथाओं के आधार पर कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। कम्बूज के विषय में एक कथा इस प्रकार आती है। 'कौण्डिन्य' ने नाग राजकुमारी सोमा से विवाह

किया था और उसी ने कम्बूज के राजवंश की नींव डाली थी। उसने द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा से एक 'कुन्त' प्राप्त किया था और इसी कुन्त पर इस राज्य की पताका फहरायी थी। दूसरे स्थल पर कौण्डिन्य को इन्द्रप्रस्थ के राजा आदित्यवंश का पुत्र बताया गया है। इन कथाओं के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि कम्बूज राज्य की स्थापना प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी के लगभग हुई थी। उस द्वीप के शिला-लेख, मूर्तियाँ और मन्दिर वहाँ के गत वैभव एवं महानता के प्रतीक हैं। जयवर्मन प्रथम और द्वितीय के समय में अंकोरवात सदृश विशाल मन्दिर और अंकोरथाम जैसे आश्चर्यजनक विराट् नगरों की स्थापना हुई थी। अकोरवाट का यह विष्णु मंदिर संसार में अद्वितीय है। कालान्तर मे शैलेन्द्रवंश के राजाओ के समय में बौद्धधर्म की हीनयान शाखा का प्राबल्य हुआ। इन राजाओं का राजनैतिक सम्बन्ध बराबर चीन देश से रहा। इनकी शक्ति ११ वी शताब्दी के अन्त तक रही और १३ वी शताब्दी के अन्त तक इस वंश का पूर्ण पतन हो गया। बरबदूर का अद्वितीय बौद्ध मदिर आज भी इन राजाओं की कलाप्रियता का परिचय दे रहा है। कम्बूज के अतिरिक्त अन्य द्वीपो मे भी राजनीतिक उथल-पथल होती रही और अनेक राज्यो का निर्माण तथा विनाश होता रहा।

तत्कालीन जावा की कला और साहित्य उस सीमा तक पहुँच चुका था जिसकी समता संसार में आज भी मुश्किल से ही मिल सकती है। सैकड़ो मन्दिर के खण्डहर तथा पत्थरो और शिलाओं पर खुदा हुआ संस्कृत भाषा पर आधारित विशाल साहित्य आज भी अपने गत वैभव की कहानी कह रहा है। रामायण और महाभारत की कथाएं वहाँ के साहित्य मे प्रमुख स्थान रखती थी। जिसका प्रमाण वहाँ का प्रचलित वजंग छाया-नृत्य है। यजपहित राज्य के पतन के साथ-साथ भारतीय कला का जावा मे ह्रास प्रारम्भ हो गया।

भारतीय संस्कृति का प्राण उसकी धार्मिक भावना है। अपनी इसी भावना को भारतीय इन द्वीपों में ले गये और भारतीय सामाजिक व्यवस्था तथा धार्मिक भावना कुछ परिवर्तित रूप मे इन द्वीपो मे इस प्रकार फैल गयी कि दोनों में कोई अन्तर ही न रह गया। हम अपने इस विचार की पुष्टि केवल स्वर्णद्वीप के इतिहास से भी कर सकते है। स्वर्णद्वीप की भौगोलिक सीमा में मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और बलि द्वीप विशेष रूप से आते है। जाति-व्यवस्था हिन्दू समाज की अपनी विशेषता है और इस व्यवस्था का उल्लेख हमे इन द्वीपो के साहित्य एव शिला-लेखो मे स्पष्टरूप से मिलता है। निःसंदेह यह जाति-व्यवस्था आज भी भारतीय जाति व्यवस्था के अधिक निकट न हो कर मनुसहिता मे वर्णित जाति-व्यवस्था के समरूप थी। उस समय बलि और लोम्बक द्वीपो मे वहाँ का समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेस्य (वैश्य) और शूद्र वर्गों में विभाजित था। प्रथम तीन को द्विजाति और अन्तिम को एकजाति कहते थे। उत्तर वैदिक कालीन सभ्यता की भाँति ही इन द्वीपों में भी अन्तर्जातीय विवाह-प्रथा प्रचलित थी। परन्तु निम्न वर्ण के पुरुष से विवाह करने वाली उच्च वर्णा स्त्री मृत्यु-दण्ड की भागी होती थी। वह अपने से उच्च अथवा सम वर्ण में ही विवाह कर सकती थी। बिभिन्न वर्णो के योग से उत्पन्न हुई संतान पिता के ही

वर्ण की मानी जाती थी यद्यपि उसका स्थान अपनी माता के जाति के अनुसार ही ऊँचा या नीचा माना जाता था।

ब्राह्मण जाति में बौद्ध और शैव नामक दो प्रमुख वर्ग थे जो पुनः उपवर्गों में बँटे थे। क्षत्रिय भी पाँच वर्गों में विभक्त थे, और उनमे पुरुष प्रायः 'देव' और स्त्रियाँ 'देसक' अथवा 'दासी' उपनाम धारण करती थीं। बलि द्वीप का शासक वर्ग 'आर्य' कहलाता था परन्तु ये क्षत्रिय नही थे। शूद्रों को 'कौलिक' कहा जाता था परन्तु ये अछूत नही माने जाते थे। तात्पर्य यह है कि यहाँ की जाति-व्यवस्था उत्तर वैदिककालीन व्यवस्था की ही भाँति उदार थी। शूद्र कृषि के अतिरिक्त कोई भी व्यवसाय कर सकते थे। यह बात अवश्य थी कि उच्च वर्गों को न्यायालयों मे विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी। यद्यपि सामाजिक जीवन की सुविधा के लिए ही इन वर्गों का विभाजन हुआ था तथापि कालान्तर मे क्षत्रिय और वैश्य शासक-जाति के होने के कारण अपने को विशेष सम्मानित समझने लगे थे। फिर भी एक राजकुमार अत्यन्त महान् होते हुए भी एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह नही कर सकता था। "जोलिगर" महोदय ने ऐसी ही एक रोचक घटना का वर्णन किया है जो इस प्रकार है।

लोम्बक द्वीप के 'मतारम वंश' का एक राजा एक ब्राह्मण युवती से प्रेम करता था। यह ज्ञात होने पर युवती के पिता ने उसे कुल्टा कह कर घर से निकाल दिया। राजा उसे वैश्य वर्ण मे परिवर्तित कर के ही उससे विवाह कर सका।

जातीय व्यवस्था पर ही आधारित बलिद्वीप की सामाजिक व्यवस्थाओं मे हम 'सती-प्रथा' और 'दास-प्रथा' दो विशेष व्यवस्थाएं पाते है। द्विजातियों की स्त्रियाँ अपने पति के शव के साथ सती हो जाती थीं। कालान्तर म यह व्यवस्था राज-वंश तक ही सीमित रह गयी। स्त्रियाँ दो प्रकार से सती होती थी। कुछ तो क्रुस (कटार) से आत्महत्या कर लेती थी और बाद मे उन्हे जला दिया जाता था। दूसरी स्त्रियाँ जलती हुई चिता मे स्वय कूद पड़ती थीं। कभी-कभी बाँदियाँ भी अपनी स्वामिनियो के साथ चिता में कूद पड़ती थीं।

दासों के साथ साधारणतः कटु व्यवहार होता था। दास चार प्रकार के होते थे। कुछ तो जन्म से ही दास होते थे। कुछ लोग युद्ध में बन्दी हो जाने पर दास बना लिये जाते थे। कुछ को ऋण न दे सकने के कारण दास बनना पड़ता था। चौथे प्रकार के दास वे होते थे जो निर्धनता के कारण इसको स्वीकार करते थे और कटु व्यवहार होने पर भी इनको कुछ सुविधाएं प्राप्त थीं और सब मिला कर उनकी हालत अच्छी ही थी।

राजनीति में स्त्रियों को विशेष अधिकार प्राप्त थे। गुणप्रिय धर्मपत्नी का नाम राजकीय आज्ञाओ में अपने पति के पहले आता था। श्री संग्रामविजय धर्मप्रसादोत्तुगदेवी 'इक्यान महामत्री' के पद पर नियुक्त हुई थीं। इसी प्रकार राजपत्नी जयनगर के बाद उत्तराधिकारिणी हुई थी। उसकी बड़ी पुत्री अपने पुत्र के होते हुए भी राज्य की अधिकारिणी घोषित की गयी थी। राजनीतिक उत्सवों पर स्त्रिया भी पारितोषिक आदि प्राप्त किया करती थी। पर्दाप्रथा का भी प्रचलन नही था और स्त्रियां स्वतन्त्रतापूर्वक पुरुषों से मिल सकती थीं। स्त्रियो को अपना वर चुनने का

अधिकार प्राप्त था यद्यपि यह स्वयवर का विकृत रूपमात्र रह गया था। चीनी साहित्य इन द्वीपों के दाम्पत्य प्रेम की कहानियों से भरा पड़ा है। इस साहित्य के आधार पर यह भी ज्ञात हुआ है कि पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी कई दिनो तक लाश के साथ सोती है, अपने बाल काट डालती है और सात दिनों बाद आग मे कूद पडती है। उसके बाद अगर वह जीवित बच जाती है तो आजन्म विवाह नहीं करती। राजाओं और दरबारियों के वैभवपूर्ण जीवन की झलक चीनी साहित्य मे हमें स्थान-स्थान पर मिलती है। उन्होंने पूर्ण रूपसे भारतीय दरबारों एवं महलो की नकल कर रखी थी। राजा, दरबारी, सरदार और उच्च पदाधिकारी ईंटो के बने विशाल प्रासादो मे रहते थे। जिनकी छतें चीनी खपरैलों से छाई जाती थी। साधारण स्तर के लोग बाँसो के मकानों मे रहते थे और उन मकानो मे खपरैलों के स्थान पर तिनको और घास-फूस का प्रयोग होता था।

उनके आमोद-प्रमोद के साधन भी अधिकतर भारतीय ढंग के ही होते थे। द्यूत-क्रीडा वहां का मुख्य व्यसन था। इसके अतिरिक्त वे अपन अवकाश के समय पाकुई तथा शतरंज खेलते थे। मुर्गो की लड़ाई मे उन्हे विशेष आनन्द आता था। वर्ष के पाँचवे और दसवे महीनों मे नौका-विहार उनका प्रमुख विनोद-साधन रहता था। जावा की नारियां संगीत और नृत्य मे विशेष रुचि रखती थी। अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित नृत्यकला यहां अब काफी उच्चकोटि की हो गयी है। इसके अतिरिक्त नाटक के रूप मे रामायण और महाभारत की कहानियो का ये अभिनय भी करते थे। यहां का सगीत, कविता, अभिनय, नृत्य--ये सभी अपने मूल रूप मे विशुद्ध भारतीय है।

मृतक की अन्त्येष्टि क्रिया करने के तीन ढग थे। कुछ लोग मुर्दो को जल मे प्रवाहित कर देते थे। एक अन्य वर्ग के लोग शवो को मैदान में छोड देते थे जिससे पक्षी उन्हे खा जायें। परन्तु सबसे अधिक प्रचलित ढग मुर्दो को जला देने का था। मृत व्यक्ति का विशेष रूप से शृंगार किया जाता था और आर्थिक स्थिति के अनुसार सुन्दर रथों मे लादकर जलाने के स्थानपर ले जाते थे। जलाने के बाद राख इकट्ठी कर के रख ली जाती थी और कुछ दिनो के बाद उसको प्रवाहित कर दिया जाता था। इस प्रकार यह प्रथा हिन्दुओ की अन्त्येष्टि-क्रिया से काफी मिलती-जुलती थी।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके है इन द्वीपो में भारतीय धर्म का विशेष रूप से प्रभाव पडा। उपनिवेशो की स्थापना के समय से ही बौद्धधर्म और ब्राह्मणधर्म का प्रभाव वहाँ पडने लगा था। धर्म-प्रचार के प्रमाण जावा और कम्बूज देश मे पर्याप्त रूप में मिलते है। ईसवी आठवी शताब्दी में जावा द्वीप में पुराणों का काफी जोर हो गया था। पौराणिक धर्म के तीन प्रमुख देवताओं ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा यहाँ विशेष रूप से होती थी। बाद मे शिव की पूजा ने यहाँ विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। जावा का गौरवमय साहित्य शिव की गाथाओं और पूजा के विधानों से भरा पड़ा है। शिव से सम्बन्धित जितनी भी कथाएं हमारे यहाँ हैं वे सभी वहाँ थोड़े परिवर्तित रूप मे प्रचलित हैं। वहाँ शिव केवल सृष्टि के संहारकर्त्ता ही नहीं अपितु पालनकर्त्ता

भी माने गये हैं। महादेव, महाकाल, भैरव आदि अनेक नामों से शिव की पूजा की जाती थी। असंख्य विशाल मन्दिरों में शिव की पूजा पार्वती, गणेश, कार्तिकेय आदि के साथ बड़े समारोह से होती है। इन सब देवताओं का अपना अलग से भी महत्त्व है। भारत की ही भाँति वहाँ भी शिवलिंग की पूजा की जाती थी।

विष्णु भगवान् के सारे अवतारों की भी पूजा वहाँ होती थी। यद्यपि प्रधानता शिव की ही थी तथापि कुछ राजाओं के समय में लक्ष्मी और विष्णु की उपासना का भी जोर था।

इन प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त अन्य देवताओं के भी मन्दिर समस्त जावा में थे। क्राफर्ड महोदय ने इन देवताओं के विषय में लिखा है कि "पत्थर और पीतल की ऐसी शायद ही कोई मूर्ति जावा में न मिले जिसका वर्णन हिन्दू धर्म की पुस्तकों में आया हो। वहाँ का धार्मिक साहित्य ही इतना विशद है कि उसका एक अलग इतिहास लिखा जा सकता है।

हिन्दू धर्म के अतिरिक्त दूसरा प्रमुख धर्म 'बौद्ध' था। सातवीं शताब्दी में हीनयान शाखा की प्रधानता थी। धीरे-धीरे महायान शाखा भी जोर पकड़ने लगी और आठवीं शताब्दी तक द्वीप पर इसी शाखा का प्राधान्य हो गया। इस बात की पुष्टि 'बरबदूर' सदृश विशाल मन्दिरों से ही हो जाती है। शैलेन्द्र राजाओं के समय में स्वर्णद्वीप बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र हो गया था और भारत से उसका काफी घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था। महापण्डित अतीस दीपंकर बंगाल से और नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य धर्मपाल बौद्ध-साहित्य का अध्ययन करने स्वर्णभूमि गये थे। बौद्धधर्म के पतन-काल में जो दशा भारत की थी, ठीक वही रूप उसका इन द्वीपों पर था। कालान्तर में हिन्दू देवताओं का भी वर्णन बौद्ध साहित्य में होने लगा और दोनों एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये थे। 'कुंजरकर्ण' और 'सुतसोम' ग्रंथों में शिव और बुद्ध भगवान् में काफी समानता दिखायी गयी है। कहीं-कहीं पर तो शिव, विष्णु और बुद्ध को एक ही शक्ति का भिन्न रूप माना गया है और हिन्दुओं के अवतारवाद को मानते हुए इन देवताओं के बारे में अनेक कथाओं का वर्णन किया गया है। यह जावा की अपनी विशेषता है।

इन बातों की पुष्टि बलि द्वीप में प्रचलित अनेक प्रथाओं से भी होती है। हिन्दुओं के सोलह संस्कारों की भाँति यहाँ भी अनेक संस्कारों में उत्सवों तथा यज्ञों आदि की व्यवस्था का विधान है। हिन्दुओं की भाँति यहाँ पितृयज्ञ का भी विशेष महत्त्व था। प्रत्येक घर में एक निश्चित स्थान रहता था जहाँ पूर्वजों की पूजा, तर्पण इत्यादि कार्य किये जाते थे। पूजा में भी घृत, कुश, मधु आदि ही वस्तुओं का प्रयोग होता था। नदियों के नाम तक गंगा और जमुना आदि भारतीय नदियों से मिलते-जुलते हैं। वहाँ के भी कुल-पुरोहित जिनको 'पदण्ड' कहते हैं विशेष सम्मानित समझे जाते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि उनको यह सम्मान जन्मतः नहीं अपितु अध्ययन और विद्वत्ता के कारण प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि वृहत्तर भारत के इन उपनिवेशों की कला, धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज आदि सभी पर भारतीय सभ्यता की स्पष्ट छाप है। भारत का इतिहास और उसकी संस्कृति को हम किसी निश्चित सीमा या काल में नहीं बाँध सकते। सत्य तो यह है कि वृहत्तर भारत के इतिहास, संस्कृति और साहित्य का अध्ययन किये बिना भारतीय इतिहास का ज्ञान अधूरा ही रह जाता है। इन सबका अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय संस्कृति का प्रसार और प्रभाव पश्चिमी, मध्य और पूर्व एशिया मे हो चुका था और उसकी महानता के गीत केवल लेखकों की कल्पना ही नही थी। इन उपनिवेशों की संस्कृति और विस्तार भारत के इतिहास का एक भूला हुआ पृष्ठ है जिसपर कोई भी भारतीय गर्व कर सकता है।

आचार्य चतुरसेन

वैदिक साहित्य में आसुरी प्रभाव

[गतांक से आगे]

दर्शन और सम्प्रदाय

पाशुपत दर्शन वास्तव में बौद्ध और हिन्दू वामाचार का सम्मिश्रण है। इनके आचारों में जटा धारण करना, भस्म लगाना, नंगा रहना या चर्मखण्ड धारण करना और लिंग-पूजन करना ही है। लिंग-पूजन को इन्होंने बहुत महत्त्व दिया। ईसा की चौथी शताब्दी में लिंग-पूजन का बड़ा महत्त्व हो गया था, वाकाटक राजाओं के सम्बन्धी राजा भारशिव कहाते थे, वे अपने कन्धे पर लिंग लिये घूमा करते थे।[1] इसी वाकाटक वंश के राजा द्वितीय रुद्रसेन को द्वितीय चन्द्रगुप्त ने अपनी कन्या प्रभावती ब्याह दी थी। इस प्रकार—गुप्त-भारशिव और वाकाटक तीन राजवंश लिंग पूजन के समर्थक और मतानुयायी थे। फिर भी भारत में सर्वत्र उसका प्रचार नहीं हुआ। ह्युएन्सग अपने यात्रा-विवरण में कहीं भी लिंग-पूजन का वर्णन नहीं करता, महादेव की मूर्ति के वर्णन उसने अवश्य किये है। काशी में उसने महादेव की १०० फुट ऊँची ताम्बे की महादेव मूर्ति देखी थी।[2] अब भी एलौरा में और दक्षिण के अनेक स्थानों में शिव की बड़ी बड़ी विशाल मूर्तियां देखने को मिलती है।

परन्तु महमूद गजनवी के समय में लिंग-पूजा सर्वत्र प्रचलित हो गयी थी और उसके साथ स्थायी रूप से शिव का नाम जुड़ गया था। सोमनाथ में लिंग-पूजन ही होता था। मूर्तियों के बनाने की विधि अलबरूनी ने वृहत्संहिता के आधार पर लिखी है। परन्तु सम्भवत: मुसलमानों के आक्रमणों से ही मूर्ति के स्थान पर शिवलिंग की पूजा प्रारंभ हो गयी थी। मुसलमान मूर्ति को तोड़ डालते थे। धातु की होने पर उठा ले जाते थे, उन्हें फिर बनाना दिक्कततलब था—ऐसी हालत में लिंग-स्थापन सरल था। फलत: सर्वत्र शैव विधि में लिंग-पूजन प्रारंभ हो गया। लोग वामाचार को भूल कर भी शुद्ध शिव लिंग पूजने लगे। परन्तु वाममार्ग का यह विष बौद्ध-जैन-शैव-वैष्णव सभी में फैल गया—छठी-सातवी शताब्दी में बौद्धों ने जो तांत्रिक ग्रन्थ लिखे है वे लिंग-पूजा के समान ही वीभत्स है, उनमें नग्न स्त्री-पूजन तथा मत्स्य, मांसादि का यथेष्ट सेवन भरपूर है, वे दिन में बुद्ध की

---

१ असंभारसंनिवेशितलिंगोद्वहनशिवसुपरितुष्टसमुत्पादितराजवंशानां. . .भारशिवानां, आदि (Corpus Inscriptionum Indicarum iii, 23-9-37, 245)

२ Buddhist Records ii, 45.

और रात में नग्न स्त्री की पूजा करते। इसी समय उन्होंने मंजु श्रीकल्प आदि पुराणों की रचना की। ऐसा ही जैनों ने किया। बौद्ध तथा जैनों के अनाचार की प्रतिक्रिया रूप कापालिकों का शैव पंथ निकला—जिन्होंने तलवार, स्त्री और मद्य की सहायता से सब को अपने रंग मे रंग लिया।

सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे दक्षिण के जैनों पर सुन्दर पाण्ड्य ने खूब गजब ढाया। पहिले यह राजा जैन-धर्मी था, पीछे उसकी पत्नी के शैव गुरु तिरुज्ञान संमद ने उसे शैव धर्म में दीक्षित कर लिया। इसके बाद उसने अपने पहले के जैन-धर्म-गुरुओं का कत्लेआम शुरू कर दिया। ८ हजार जैन साधुओं की उसने क्रूरतापूर्ण हत्या की। उसके क्रूर अत्याचारो के चित्र अर्काट के तिरुवत्तूर मंदिर की दीवारों मे खुदे हुए है?[१]

वैष्णव धर्म

भक्ति से अभिप्राय वैष्णव धर्म से है। शठकोपाचार्य और यवनाचार्य ने जो उद्योग किया उस पर फल आया ईसा की तीसरी शताब्दी मे, जब मद्रास के द्रविड़ ब्राह्मण विष्णु स्वामी ने वैष्णव संप्रदाय की स्थापना की, इसे पुष्ट किया रामानुजाचार्य ने। उनका जन्म ई० स० १०१७ में श्रीरंग के पुजारी-वंश में हुआ। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचा और विशिष्टा द्वैत मत चलाया। उस समय कुलोत्तुग नामक चोल राजा रंगम मे गद्दी पर था। उसे रामानुज का यह उद्योग अच्छा नही लगा। उसके भय से ई० स० १०८० से १०९० के बीच रामानुज को रगम छोड कर भागना पड़ा। कुलोत्तुग ने रामानुज के मित्र कुरत्तालवार की आँखे फुड़वा डाली और इस संप्रदाय का जो आदमी जहाँ मिला उस पर अत्याचार किया। रामानुज ने दस बारह वर्ष मद्रास मे रह कर और वहाँ के राजा विट्टिदेव (विष्णुवर्धन) को अपना अनुयायी बना कर जैनों पर मनमाना अत्याचार किया, उनके सिर तेल की घानी में डाल कर पीस दिये।

शिव और विष्णु दोनों ही लड़ाके देवता है। दोनों ने दैत्य-वंश का संहार करने मे उचित अनुचित कुछ भी नही देखा। शिव तो साक्षात् भूत-पिशाचो के स्वामी है इसी से उनके सम्प्रदाय मे पाशुपत और कापालिक जैसे अघोरी-पन्थो का उदय हुआ। दक्षिण मे जब शैवों द्वारा बौद्धो और जैनो का महत्त्व नष्ट हुआ तो वासुदेव और विष्णु की पूजा प्रचलित हो गयी। आगे ये दोनो ('विष्णु के अवतार ही वासुदेव है') कह कर एक कर दिये गये। परन्तु इस देव-पूजा को वैदिक आधार प्राप्त नही था इससे उक्त वर्गीय लोग उसे नही मानते थे, इसलिए रामानुज ने श्रीभाष्य और अन्य संस्कृत ग्रन्थ लिख कर विष्णु पूजा को महत्त्व देने का प्रयत्न किया। तथा प्रस्थानत्रयी का सहारा लिया।

रामानुज के पश्चात् माध्वाचार्य ने वैष्णवों की एक और शाखा स्थापित की। इनका जन्म ई० ११९७ मे हुआ और मृत्यु १२७६ के लगभग। यह समय उत्तर भारत मे मुसलमानो के

---

१ Early History of India, P. P. 474-75

२ देखिए—Ancient India; P P. 258 60

उदय का था। लोग जबर्दस्ती मुसलमान बनाये जा रहे थे और मस्जिद तथा ईदगाह बन रहे थे, परन्तु दक्षिण में ये हिन्दू ब्राह्मण नये-नये पंथ बनाये जा रहे थे। उस काल में जैसी राजनैतिक अंधाधुधी थी वैसी ही धार्मिक भी। जैसे कोई छोटा-मोटा जमींदार थोड़ी सेना एकत्र कर आसपास का इलाका लूट कर राजा बन जाता था वैसे ही कोई भी विद्वान् ब्राह्मण अपने अनुकूल ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिख एक नया संप्रदाय खडा कर डालता था। जनता के सुख-दुःख से उस समय न राजा को वास्ता था, न इन धर्माधिकारी ब्राह्मणों को।

वैष्णव धर्म की तीसरी शाखा के प्रवर्तक निम्बार्क ने बारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे काम किया। ये तेलगु ब्राह्मण थे। इन्होंने वासुदेव पूजा को दूसरी दिशा में मोड़ा। विष्णु और लक्ष्मी अथवा कृष्ण-रुक्मिणी को एक ओर हटा कर राधा-कृष्ण की पूजा को महत्त्व दिया। राधा और गोपियों को आगे लाने वाले ये प्रथम वैष्णव नेता थे। इनके बाद पद्रहवीं शताब्दी के अंत मे तथा सोलहवी के प्रारम्भ मे वल्लभाचार्य और चैतन्य ने राधा-कृष्ण की पूजा का और भी विकास किया। धीरे-धीरे वामतत्त्व की प्रधानता बढ़ी और कृष्ण की अपेक्षा राधा की पूजा को महत्त्व मिलने लगा। कृष्ण ओर गोपियों की क्रीडाएं गुप्तकाल ही में उच्च वर्ग मे प्रिय हो चली थीं, अब राधा को परकीया के रूप में खुल्लम खुल्ला आगे लाने पर उसी के आधार पर वामतत्त्व ज्ञान स्थापित किया गया।

(समाप्त)

श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

महाकवि माघ और उनका काव्य-सौन्दर्य

माघ केवल एक सिद्धहस्त कवि ही नही थे, प्रत्युत वे एक सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनकी जैसी बहुज्ञता तथा बहुश्रुतता अन्य संस्कृत कवियो में कम मिलती है। भिन्न-भिन्न शास्त्रो की छोटी-से-छोटी बातो का जिस निपुणता एव सुन्दरता के साथ उन्होने वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि उन सब पर उनका असाधारण अधिकार था। संस्कृत साहित्य के किसी अन्य काव्यग्रन्थ मे विविध शास्त्रीय एव लौकिक विषयो पर इस प्रकार साधिकार रचना करने की सफलता अकेले माघ को ही मिली थी। दर्शन, राजनीति, कूटनीति, सामाजिक जीवन, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, सेना, गज एव अश्व-शास्त्र तथा युद्धविज्ञान, मंत्र, पुराण, गाथा, वर्णाश्रम मर्यादा, अलकार एव छन्द-शास्त्र--इन सब पर उनका यथेष्ट अधिकार था। यद्यपि वे सनातन धर्मानुयायी थे किन्तु नास्तिक दर्शनो की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातो की भी उन्हे अच्छी जानकारी थी और उन सब पर पूर्ण सहानुभूति भी थी। वेदो से लेकर पुराणो एवं स्मृतियों तक पर उनका पूर्ण अधिकार था, साथ ही व्याकरण के तो वे प्रकाण्ड पण्डित ही थे। पुरोहित-कर्म एव यज्ञ-दीक्षा आदि कर्मकाण्डो के सम्बन्ध मे भी उनकी जानकारी एक अधिकारी विद्वान् की थी। नीचे कतिपय उदाहरणो द्वारा उनके इन सभी विषयो के असाधारण पाण्डित्य पर प्रकाश डाला जायगा।

आस्तिक दर्शनो म मे यथावसर उन्होने जो प्रसग लिये है, उन्हे अच्छी तरह पल्लवित भी किया है। विशेषकर साख्य के तत्त्वो की चर्चा तो उन्होने अनेक स्थलो पर की है। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन की कुछ बातो की भी अनेक स्थलो पर चर्चा की गयी है। प्रथम सर्ग मे देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण की जो प्रार्थना की है वह साख्य शास्त्र के अनुसार है। इसी प्रकार चौदहवे सर्ग में राजसूय यज्ञ के प्रकरण मे सांख्य मत की उपमा देते हुए युधिष्ठिर के लिए बताया है कि वे स्वयं कुछ कार्य नही कर रहे थे--पुरोहित ही उनका सब कार्य कर रहे थे।

उदासितारं निगृहीत मानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः[1] ॥१।३३।

१--देवर्षि नारद कहते हैं--योगी लोग अपनी चित्तवृत्तियों को अंतर्मुखी कर के अध्यात्म-दृष्टि से किसी प्रकार आपका दर्शन करते हैं। वे आपको संसार से उदासीन, महद् आदि विकारों

तस्य सांख्य पुरुषेणतुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्त्तता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि' ॥१४।१९॥

मीमांसा और वैशेषिक दर्शन की चर्चा भी इसी राजसूय यज्ञ के प्रसंग में की गयी है और उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण भी हुआ है। चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के प्रकरण में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एवं दान की छोटी-छोटी बातों की चर्चा की गयी है। उनसे मालूम पड़ता है कि कवि ने अपने जीवन में किसी विशाल यज्ञ का समारम्भ एवं समावर्तन समारोह सम्पन्न किया था। राजसूय यज्ञ में दान के मार्मिक प्रसंगो को लेकर कवि ने अपनी सहृदयता से अत्यन्त उज्ज्वल तो बना ही दिया है, साथ ही युधिष्ठिर के पावन-चरित में भी चार चाँद लगा दिया है। नीचे के श्लोक देखिए—

निर्गुणोऽपि विमुखो न भूपतेर्दानशौण्डमनसः पुराभवत्।'
वर्षकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्॥
प्रेम तस्य न गुणेषु नाधिकं न स्म वेद न गुणान्तरं च सः।
वित्सया तदपि पार्थिवोऽर्थिनं गुण्य गुण्य इति न व्यजीगणत्॥
सर्ग १४।४६,४७॥

इसी प्रकार योगशास्त्र विषयक प्रवीणता के लिए कवि के निम्नलिखित दो श्लोक पर्याप्त हैं।

से पृथक्, सत्व, रजस्, तमस्—इन तीनों गुणों से लिप्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न विज्ञानघन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं। इस प्रकार का मत कपिल आदि ऋषियों का है।

१—जिस प्रकार सांख्य के मत में पुरुष अपने आप पुण्य-पाप आदि कोई काम नहीं करता, बुद्धि ही सब कार्य करती है, तब भी पुरुष उन सब कार्यों का साक्षी होता है और वही कर्त्ता कहलाता है, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर उस राजसूय यज्ञ में यद्यपि कोई कार्य नहीं कर रहे थे, पुरोहित लोग सब कार्य कर रहे थे, और युधिष्ठिर उन सब को देख भाल रहे थे, अतः वही उस यज्ञ के कर्त्ता थे।

२—दानशूर युधिष्ठिर ने विद्या, तप आदि से शून्य निर्गुण याचकों को भी खाली हाथ नहीं जाने दिया, क्योंकि जल बरसाने वाला मेघ क्या कभी ऊसर को छोड़ कर वृष्टि करता है? इस बात से यह नहीं समझना चाहिए कि महाराज युधिष्ठिर गुणग्राही नहीं थे अथवा उन्हे गुणों का पारस्परिक अन्तर नहीं ज्ञात था—यह बात नहीं थी, बल्कि बात यह थी कि निरन्तर दानशीलता में लगे रहने के कारण उन्हें इस बात का भी ध्यान नहीं था कि प्रार्थियों में कौन गुणी है और कौन निर्गुण।

मैत्र्यादि चित्त परिकर्म विदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्ध सबीज योगाः।
ख्याति च सत्त्व पुरुषान्यतयाऽधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्[1] ॥ सर्ग ४।५४
सर्व वेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
क्लेश कर्म फल भोग वर्जितं, पुं विशेषममुमीश्वरं विदुः[2] ॥ सर्ग १४।६२

प्रथम श्लोक में प्रयुक्त 'मैत्र्यादि', 'चित्त परिकर्म', 'सबीजयोग', 'सत्त्व पुरुषान्य तयाख्याति', 'क्लेश' आदि योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली हैं तथा द्वितीय श्लोक मे योगशास्त्र के सिद्धान्तों की दृष्टि से परमात्मा की विशिष्ट संज्ञाओं अथवा विशेषणों की चर्चा की गयी है। यहाँ ज्ञानी पुरुष से कवि का तात्पर्य योगी पुरुष से है।

अद्वैत वेदान्त के तत्त्वों का प्रतिपादन तो अनेक स्थलों पर है। संसार को मिथ्या माया मान कर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एकमात्र सत्य मानने की चर्चा तथा केवल ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष-प्राप्ति की आकाक्षा को कवि ने अनेक स्थलों पर प्रकट किया है। वेदान्त की कुछ अन्यान्य सिद्धान्त-परक बातो की भी उन-उन अवसरों पर चर्चा आयी है। इस सम्बन्ध में एक ही प्रसंग उद्धृत कर देना पर्याप्त है।

ग्राम्य भावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः ॥ १४ सर्ग। ६४॥

नास्तिक दर्शनो में बौद्धमत की चर्चा अनेक अवसरो पर ही की गयी है तथा जैन मत के आदि प्रवर्त्तक महावीर स्वामी के प्रति भी एक स्थान पर आदर व्यक्त किया गया है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कवि ने पुराणवादियो की भांति महावीर स्वामी को भी भगवान् विष्णु का एक अवतार स्वीकार किया है।

१--यह प्रसंग रैवतक वर्णन का है। इस रैवतक गिरि पर समाधि धारण करने वाले योगी जन मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा--इन चारों चित्त की शोधक वृत्रियों को भली भाँति जान कर एवं अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश--इन पांचों क्लेशो को दूर कर, बीज युक्त योग को प्राप्त कर एवं प्रकृति तथा पुरुष की ख्याति अर्थात् ज्ञान को पृथक्-पृथक् रूप मे जान कर उस 'ख्याति' को भी दूर करने की अभिलाषा करते हैं।

२--यह प्रसंग उस समय का है, जब राजसूय यज्ञ में भीष्म भगवान् श्रीकृष्ण की प्रथम पूज्यता के सम्बन्ध में युधिष्ठिर का समाधान करते हैं--'ये भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, अनादि, अनन्त, संसार के प्राणियों पर अनुग्रह करने की भावना से शरीर धारण करने वाले, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-क्लेशों से रहित, पाप और पुण्य के फल-भोग से रहित, ईश्वर और परम पुरुष हैं। इन्हें इन्हीं रूपों में ज्ञानी पुरुष जानते हैं।'

३--मोक्ष की आकांक्षा करने वाले अपने अज्ञान को नष्ट करने की इच्छा से, योगाराधन में चित्त लगा कर दुर्ज्ञेय और अद्वितीय परमेश्वर में प्रवेश कर जाते हैं।

सर्व कार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्ध पञ्चकम्।
सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्[1] ॥सर्ग २।२६॥

इस एक ही श्लोक में कवि ने बौद्ध दर्शन की स्थूल बातों के साथ राजनीति की सूक्ष्म बातों की सुन्दर चर्चा कर दी है। मीमांसा शास्त्र की निपुणता निम्नलिखित दो श्लोकों से ज्ञात होती है।

प्रति शरणमशीर्ण ज्योतिरग्न्याहितानां विधिविहित विरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृत गुरु दुरितौघ ध्वंसमध्वर्युवर्यैं हुंतमयमुपलीढे साधु सानाय्यमग्निः[2] ॥सर्ग ११।४१॥
शब्दितामनपशब्द मुच्चकैं र्वाक्य लक्षण विदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजन धर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्[3] ॥सर्ग १४।२०॥

संगीत एवं अन्यान्य उपयोगी ललित कलाओं की सूक्ष्म बातों की चर्चा अनेक जगह की है। गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध में कवि की अधिकारपूर्ण उपमाएं एवं उक्तियां सिद्ध करती है कि संगीत-शास्त्र पर उसका साहित्य-शास्त्र के समानही असाधारण अधिकार था। इसी प्रकार नृत्यकला तथा नाटचकला पर भी उसने अधिकार प्राप्त किया था। कवि की संगीत की निपुणता निम्नलिखित दोनो श्लोकों से प्रकट होती है—

रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्न श्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद् ग्राम विशेष मूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः[4] ॥ सर्ग १।१०॥

१—बौद्ध मत के अनुयायी आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं मानते। वे शरीर को पांच स्कन्धों से युक्त मानते हैं-रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार। इन पांच स्कन्धों के अतिरिक्त जिस प्रकार शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है उसी प्रकार राजाओं के लिए अंग-पंचक युक्त मंत्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्य मंत्र नहीं है। वे पांचों अंग ये हैं—सहाय, साधनोपाय, देशकालविभाग, विपत्ति प्रतीकार तथा सिद्धि। तात्पर्य यह है कि राजा को बौद्धों के पांचों स्कन्धों की भांति केवल इन अंग-पंचकों की ही चिन्ता रखनी चाहिए।

२—यह अग्नि अग्निहोत्र करने वाले प्रत्येक द्विज के घर में जल रही थी। उसमें श्रेष्ठ पुरोहित लोग शास्त्रीय रीति से उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का ध्यान रख कर अग्नि प्रज्वलित करनेवाले मंत्रों का पाठ करते हुए सम्यक् प्रकार से आहुति डाल रहे थे और अग्नि उसका आस्वादन कर रही थी। अग्नि का वह आस्वादन गुरुतर पाप-समूहों को नष्ट कर रहा था।

३—मीमांसा शास्त्र के पारंगत पुरोहित गण अपभ्रंश शब्दों को त्याग कर आवाहन मंत्रों के द्वारा उच्च स्वर से इन्द्र आदि देवताओं को आवाहित कर उनके उद्देश्य से यज्ञ-मन्त्रों द्वारा हवन करने योग्य सभी द्रव्यों की आहुति देने लगे।

४—नारद जी अपनी उस महती नामक वीणा को बार-बार देखते हुए जा रहे थे, जिसमें से वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन अर्थात् गुंजार से

श्रुति समधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।
प्रणिजगदुरकाकु श्रावकस्निग्ध कण्ठाः परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय[1] ॥ सर्ग ११।१।

नीचे के श्लोकों में श्लेष की सुन्दर छटा के साथ-साथ कवि ने अपने नाट्यशास्त्रीय ज्ञान का जो परिचय दिया है, वह उच्च कोटि का है—

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।
भरतज्ञ कवि प्रणीतकाव्यग्रथितांका इव नाटक प्रपंचाः[2] ॥ सर्ग २०।४४॥

तथा स्वादयन रसमनेकसंस्कृत प्राकृतैरकृतपात्र संकरैः।
भावशुद्धि विहितैर्मुदं जनो नाटकैरिव बभार भोजनैः[3] ॥ सर्ग १४।५०॥

कवि की राजनीतिज्ञता के सम्बन्ध में तो उसके अकेले महाकाव्य के उद्धरणों से एक छोटी-मोटी पुस्तिका प्रस्तुत की जा सकती थी। राजा के छोटे-मोटे कर्तव्यों से लेकर उसकी सेना की छोटी-छोटी बातों तक का उसे पूरा पता था। सन्धि-विग्रहादि गुणों के प्रयोगों के अवसरों पर

निकलने वाली श्रुतियों के समूहों एवं सा रे ग म प ध नी आदि सातों स्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की इक्कीसों मूर्च्छनाएं अपने आप प्रकट हो रही थीं।

१—श्रुतियों का पाठ करने वाले मागध गण अनेक श्रुतियों से युक्त षड्ज स्वर को छोड़ कर तथा पंचम स्वर एवं ऋषभ स्वर को त्याग कर उच्च स्वर में गाते हुए रात्रि के बीतने की सूचना भगवान् श्रीकृष्ण को देने लगे। उस समय उनका वह मधुर स्वर दूर-दूर तक सुनाई पड़ता था और उसमें कोई भी विकार नहीं था। उनके उस गान के साथ वीणा आदि वाद्य भी बज रहे थे। आचार्य भरत के मतानुसार प्रभातकाल के गीत की जैसी विशेषताएं होनी चाहिए, कवि ने उन सब की ओर इसमें संकेत किया है।

२—भरत मुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र को भली भाँति अधिगत करने वाले कवि लोग जिस प्रकार किसी उपाख्यान को लेकर नाटक की रचना करते हैं और उसके अंकों को मुख की ओर विस्तार युक्त तथा पीछे की ओर क्रमशः संक्षिप्त रखते जाते हैं उसी प्रकार युद्धभूमि में छोड़े गये वे सर्व गण मुख की ओर मोटे तथा पीछे की ओर क्रमशः सूक्ष्म दिखाई पड़ रहे थे।

३—जिस प्रकार दर्शक लोग नाटकों को देखते समय शृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहों रसों के व्यंजनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटक में जिस प्रकार संस्कृत, प्राकृत अनेक भाषाओं का व्यवहार होता है, उसी प्रकार उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी बहुत से पदार्थ संस्कृत अर्थात् पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अर्थात् वैसे ही कच्चे खाये जा रहे थे। जिस प्रकार नाटक में एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नहीं करता उसी प्रकार भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता था। नाटक में जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है, उसी प्रकार उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक शुद्धि थी।

उसने अपनी युक्तियों तथा परस्पर विरोधी तर्कों से उन्हें इतना सुगम बना दिया है कि उसकी सूझ-बूझ पर विस्मित होना पड़ता है। उद्धव और बलराम के मुख से तथा युधिष्ठिर और भीष्म के मुख से भी उसने राजनीति की जटिल से जटिल समस्याओं पर ऐसे उपादेय हल प्रस्तुत किये है, जो आज प्रजातन्त्र के युग में उसी प्रकार से प्रयोग में लाये जा सकते हैं। प्रजा की सर्वविध हित-रक्षा और राजा के विशेष व्यापक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए उसने जिस राजतंत्र की समर्थिका राजनीति की चर्चा अपने महाकाव्य में की है, वह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की परम्परा के सर्वथा अनुकूल ही है। राजनीति की जटिल गुत्थियों पर उसने जो प्रसंगगत विचार प्रकट किये है, उससे ज्ञात होता है कि उसका यह ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान नहीं था। शिशुपाल वध का द्वितीय सर्ग कवि की राजनीतिज्ञता का अच्छा निदर्शक है। राजनीतिक दाँव-पेंचों की ऐसी कोई चीज उसमें नहीं छूटने पायी है, जिसकी कमी की ओर हमारा ध्यान जा सके। परस्पर विरोधी विचारों को आमने-सामने रख कर उसने उचित पक्ष के निर्णय का जो प्रसंग उपस्थित किया है, उससे पाठकों को भी दैनिक कार्यों मे आवश्यक राजनीति का अपेक्षित ज्ञान हो जाता है। नीचे के कुछ श्लोकों में कवि की राजनीतिज्ञता का नमूना लीजिए—

सम्पदा सुस्थिरं मन्ये भवति स्वल्पयाऽपि यः।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्॥[1] २।३२॥

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते॥[2] २।३४॥

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्॥[3] २।४२॥

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधि रोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः[4]॥२।४६॥

राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का तो कवि ने अनेक अवसरो पर प्रयोग किया है,

---

१—जो मनुष्य थोड़ी-सी सम्पत्ति पा जाने पर अपने को सुस्थिर या निश्चिन्त मान लेता है, उसकी उस स्वल्प सम्पत्ति को कृतार्थ विधाता भी नहीं बढ़ाता है—ऐसा मैं मानता हूँ।

२—शत्रु का समूल नाश किये बिना प्रतिष्ठा की प्राप्ति दुर्लभ है। जल धूल को कीचड़ बनाये बिना नहीं रुक सकता।

३—जो मनुष्य पहले ही से रूठे हुए शत्रु के साथ बैर ठान कर उसकी उपेक्षा करता है अथवा उसकी ओर से उदासीन हो जाता है, वह वायु के सम्मुख तिनकों के समूह में आग लगाकर सोता है।

४—जो धूल पैर से आहत होने पर उड़ कर आहत करने वाले के शिर पर चढ़ जाती है, वह अपमान होने पर भी बेफिक बैठ रहने वाले मनुष्य से अच्छी ही है।

छः गुण, तीन शक्ति, तीन उदय तथा अंग पंचक आदि पारिभाषिक शब्दों की चर्चा इन श्लोकों में देखिए—

षड्गुणाः शक्तयस्तिस्त्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः। सर्ग २।२६॥
सर्वं कार्य शरीरेषु मुक्त्वांगस्कन्धपञ्चकम् ॥सर्ग २। २८॥

कुछ दूसरे पारिभाषिक शब्दों को लीजिए—

उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते॥[1] २।८१॥
बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यंगो घनसंवृति कञ्चुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।[2] २।८२

सेना के विभागों तथा उपविभागों के साथ-साथ दुर्ग-रचना, अभियान, युद्धकला अथवा शस्त्रास्त्रों की मारपीट के अच्छे-अच्छे गुर कवि को बखवी ज्ञात थे। अठारहवें, उन्नीसवें तथा बीसवें सर्ग के २७१ श्लोकों में कवि के इस विषय के परिपक्व ज्ञान का पूर्ण परिचय मिलता है। गजो और अश्वों के लक्षणों से लेकर उनके स्वभाव की छोटी-से-छोटी बातों की चर्चा कवि ने की है। युद्धस्थल का ऐसा रोमांचकारी विपुल वर्णन संस्कृत काव्यों में अन्यत्र दुर्लभ है। खच्चरों और ऊँटों से लेकर बैलों और भैंसों के स्वभावों तथा कार्यों की भी चर्चा की गयी है। साथ ही युद्धस्थल के लिए इन सब के खाद्य पदार्थों तथा उपयोगी औषधियों की भी अच्छी चर्चा है। अश्वों तथा गजों के भेदों तथा गुण दोषों की भी उसे प्रामाणिक जानकारी रही। नीचे के दो श्लोकों में उसने अश्वों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह उसके शालिहोत्री (अश्वशास्त्रनिष्णात) होने का पर्याप्त प्रमाण है—

१—बारह प्रकार के राजाओं के मध्य में विजयाभिलाषी राजा अकेला होने पर भी बारहों आदित्यों के मध्य में दिनकर सूर्य की भाँति इच्छा-शक्ति को न छोड़ते हुए अपनी उन्नति में समर्थ होता है। बारह प्रकार के आदित्यों की भाँति बारह राजा ये होते हैं—शत्रु, मित्र, शत्रु का मित्र, मित्र का मित्र, शत्रु के मित्र का मित्र, पार्ष्णिग्राह (अपने पीछे सहायता पहुँचाने के लिए स्वयं आने वाला), पार्ष्णिग्राहासार (अपने पक्ष में सहायता के लिए बुलाया हुआ राजा), आक्रन्दासार (शत्रु के पक्ष में सहायतार्थ बुलाया हुआ राजा), विजिगीषु अर्थात् विजयाभिलाषी, मध्यम तथा उदासीन। इन बारहों राजाओं में विजयाभिलाषी ही अपनी उत्साह शक्ति से उदय प्राप्त करता है। अन्य ग्यारहों में से पाँच प्रथम सम्मुख या पुरस्सर तथा चार पृष्ठगामी एवं मध्यम तथा उदासीन —ये स्वतंत्र रहते हैं।

२—जिसका शस्त्र बुद्धि है, जिसके अंग स्वामी एवं अमात्य आदि राज्यांग है, जिसका कवच दुर्भेद्य मंत्र की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर हैं, जिसका मुख संदेशवाहक दूत है—ऐसा राजा कोई अलौकिक पुरुष ही हैं' अर्थात् इस लोक में रहते हुए भी इन अंगों से युक्त वह अलौकिक पुरुष है।

तेजो निरोध समता वहितेन यन्त्रा सम्यक् कशात्रय विचार विदा नियुक्तः।
आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चैश्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन ।।५ सर्ग १०।।

तथा— अव्याकुलं प्रकृतिमुत्तरधेयकर्मधाराः प्रसाधयितुमव्यतिकीर्ण रूपाः।
सिद्धं मुखे नवसु वीथिषु कश्चिदश्वं वल्गाविभागकुशलो गमयाम्बभूव ।।
सर्ग ५।६०।।

इसी प्रकार हाथियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन श्लोक उसके गज-सम्बन्धी गहरे ज्ञान का विशेष परिचय देते हैं—

गण्डूष मुज्झितवता पयसः सरोषं नागेन लब्ध परवारण मारुतेन।
अम्भोधिरोधसि पृथु प्रतिमानभागरुद्धोरुदन्त मुसलप्रसरं निपेते ।।
सर्ग ५।३६।।

स्तम्भं महान्तमुचितं सहसा मुमोच दानं ददावतितरां सरसाग्रहस्तः।
बद्धापराणि परितो निगडान्यलावीत् स्वातन्त्र्यमुज्ज्वलमवाप करेणुराजः ।।

१—'तीव्र वेग को रोकनेवाली लगाम को थामने में सावधान एवं उत्तम, मध्यम और अधम—इन तीनों प्रकार की चाबुकों के प्रयोगों को जाननेवाले घुड़सवारों से भलीभाँति हाँके गये ऊँचे, आरट्ट अर्थात् अरब देश में उत्पन्न घोड़े अपने विचित्र पाद-विक्षेप द्वारा कभी अत्यन्त चंचल और कभी कठोर भाव से, मण्डलाकार गति विशेष से चल रहे थे।' इसमें घोड़े की गति एवं चाबुक के लक्षणों की शास्त्रीय बातों की चर्चा की गयी है।

२—लगाम के नियंत्रण में कुशल एक घुड़सवार अव्यग्र अर्थात् शान्त स्वभाववाले, भली भाँति सुसज्जित एवं मुखकर्म अर्थात् छहों दिशाओं में मुख करने में प्रवीण एक अश्व को युद्धादि के उत्तर काल में करने योग्य कार्यों के लिए असंकीर्ण रूपा अर्थात् सरपट नामक विशेष गति को सिखाने के लिए नवों प्रकार की वीथियों का अभ्यास कराने लगा।

३—दूसरे गजराज के मद की सुगन्ध पाकर एक गजराज क्रोध के साथ अपने मुखस्थ जल को बाहर फेंक कर समुद्र तट पर मूसल के समान दोनों विशाल दांतों के प्रहार करने के वेग को निरुद्ध करते हुए कोई अवरोधक न होने के कारण स्वयं गिर पड़ा।

४—एक गजराज ने अनियंत्रित स्वच्छन्दता प्राप्त की। उसने अपने चिर परिचित महान् स्तंभ को एकाएक तोड़ दिया। हस्त (शुण्ड) के अग्रभाग को आर्द्र (गीला) करके प्रचुरमात्रा में दान दिया अर्थात् मद जल गिराया, तथा चारों ओर से पिछले पैरों को बाँधने वाली बेड़ियों को तोड़ डाला। गजराज की भाँति राजा भी इसी प्रकार की उज्ज्वल स्वतंत्रता प्राप्त करता है। वह भी अपने बंधनों को तोड़ता है, हाथ में जल ले कर ब्राह्मणों को दान करता है तथा कारागार में पड़े हुए शत्रुओं की बेड़ियाँ काट देता है।

अक्षे अनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने संरब्ध हस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः।
गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः[1]॥

सर्ग ५।४८-४९॥

ऊँटों तथा जंगली सांड़ों और बैलो की प्रकृति का कवि ने इतना स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन किया है कि उसमे रेखाचित्र प्रस्तुत करने की पूर्ण क्षमता है। दूध दुहते हुए गोपों, खेत की रखवाली करनेवाली गृहस्थ-रमणियों, हाथी, घोड़ा, ऊँट और खच्चर हाँकने वाले राज-कर्मचारियों के चित्रण मे एव उनकी विभिन्न चेष्टाओं के वर्णन मे कविने चित्रकार को भी चुनौती दे दी है। सचमुच कवि के वर्णनों मे रेखाओ के बिना चित्र प्रस्तुत करने की सम्पूर्ण सामग्रिया मौजूद है। इन बातो से यह भी पता लगता है कि उसका चित्रकला पर भी अच्छा अधिकार था। एकाध स्थलों पर चित्रकला सम्बन्धी स्फुट प्रसगो की चर्चा कर के कवि ने अपने इस विषय के ज्ञान का भी परिचय दिया है।

और कवि के साहित्य के विभिन्न अगों--रस-सिद्धान्त, छन्द और अलंकारो की सिद्धहस्तता का कहना ही क्या है ? यह सब तो कवि का अपना अधिकृत क्षेत्र है। जिधर से उसकी इच्छा हुई है, प्रसंग आरम्भ किया है और जिधर से चाहा है, समाप्त किया है। राजनीति और कूटनीति जैसे नीरस विषयों मे भी उसने साहित्यिक पदार्थों की चर्चा कर के उन्हे हृदयंगम करने योग्य और अधिकाधिक उपादेय बना दिया है। नीचे के दो श्लोको मे कवि ने अपने इस विषय के हस्तलाघव का अनुसरणीय प्रदर्शन किया है—

तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः।
नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवे[2]॥ २।८३॥

१--एक हठीला गजराज कुपित महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरता पूर्वक अंकुश लगाये जाने पर भी आँखें मूद कर जब खड़ा ही रह गया और अपना ग्रास भी नहीं ग्रहण किया तब लोगों ने जान लिया कि जो सचमुच महान् होते है वे क्षीणशक्ति होने पर भी बलपूर्वक वश में नहीं लाये जा सकते। यहाँ गंभीरवेदी शब्द पारिभाषिक है जिसका लक्षण है कि जो हाथी अंकुश द्वारा चमड़ी काट देने पर, रक्त बहा देने पर तथा मांस काट देने पर भी अपने होश में नहीं आता वह गंभीर-वेदी कहलाता है।

२--समय को पहचानने वाले राजा के लिए केवल क्षात्र तेज दिखलाना अथवा केवल क्षमा दिखलाना--इसका कोई एकान्त नियम नहीं रहता। वह समय देख कर जहां जिसकी आवश्यकता होती है, उसका प्रयोग उसी प्रकार करता है, जैसे रसों और भावों के मर्म को जाननेवाले कवि के लिए केवल ओज गुण अथवा केवल प्रसाद गुण ही अनुसरणीय नहीं होता। वे दोनों ही का यथा-प्रसंग अनुसरण करते हैं।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते[1] ॥२।८६॥
स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः ॥ सर्ग[2] २।८७॥

आयुर्वेद अथवा वैद्यक शास्त्र की सिद्धान्तसम्बन्धी छोटी-मोटी बातों की चर्चा कवि ने अनेक अवसरों पर की है। उन सब के परिशीलन से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद की रोग एवं औषधियों-सम्बन्धी अनेक बातों का उसे ज्ञान[3] था और कतिपय रसायनों तथा औपचारिक प्रयोगों की भी उसे पूरी जानकारी थी।

माघ के परम वैयाकरण होने की चर्चा पहले की जा चुकी है। अपने महावैयाकरण के रूप को उन्होंने प्रायः प्रत्येक सर्ग में प्रकट किया है और नूतन प्रयोगों तथा सिद्धान्तों की चर्चा से यह सिद्ध कर दिया है कि साहित्य के समान ही व्याकरण भी उनका प्रिय विषय था। व्याकरण की नीरस परिभाषाओं का उन्होंने अपनी मनोहर उपमाओं में सुन्दर प्रयोग किया है और मनोहर संयोग बैठाया है। संस्कृत व्याकरण के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का भी उन्होंने एकाध स्थलों को छोड़ कर कहीं भी उल्लंघन नहीं किया है और ऐसे-ऐसे शब्दों को गढ़ कर उनका प्रयोग किया है कि छन्दों की श्रुतिमधुरता बहुत बढ़ गयी है।

कवि के व्याकरण-सम्बन्धी पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिए उद्धरणो की कोई आवश्यकता नहीं है। कदाचित् ही ऐसा कोई श्लोक हो जिसमें उसने किसी सुन्दर, सुघड़ किन्तु नूतन (कवियो के प्रयोग में नूतन) शब्द का प्रयोग न किया हो। व्याकरण-सम्बन्धी प्रसंगों एवं सिद्धान्तों के लिए द्वितीय सर्ग के ४७, ११२ तथा १९ वें सर्ग के ३५ वें श्लोक को देख लेना ही पर्याप्त है।

माघ में पाण्डित्य-प्रदर्शन का शौक अत्यन्त दुर्निवार था। कवित्व की सहज शक्ति के साथ ही उनमें पाण्डित्य का स्वाभिमान एव दूसरों को स्तम्भित करने की इच्छा भी पूर्णतः जागरूक थी। अपने अकेले महाकाव्य को उन्होंने सर्व-साधन-सम्पन्न सम्राट् के एकलौते बेटे की भाँति, अपनी समस्त समृद्धियों एवं शक्तियों से लालित-पालित किया है। अपने पूर्ववर्ती कवियों एवं उनकी कृतियों की समस्त विशेषताओं को आक्रान्त करने की उनमे प्रबल स्पर्धा पाई जाती है। संस्कृत के

१—विद्वान् पुरुष न तो दैव के भरोसे रहता है और न केवल पुरुषार्थ पर ही आश्रित रहता है; किन्तु वह तो शब्द और अर्थ—दोनों की अपेक्षा करने वाले सुकवि की भाँति, दैव और पुरुषार्थ—दोनों की अपेक्षा करता है। उत्तम काव्य का लक्षण है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।" काव्य प्रकाश।

२—जिस प्रकार रस की अवस्था प्राप्त करनेवाले एक ही स्थायी भाव के अनेक संचारी भाव स्वयं आकर सहायक हो जाते हैं उसी प्रकार क्षमापूर्वक उपयुक्त काल की प्रतीक्षा करनेवाले एक ही विजिगीषु राजा की सिद्धि में दूसरे राजा लोग स्वयमेव आकर सहायक हो जाते हैं।

३—देखिए शिशुपाल वध सर्ग २, ५४, ९३, ९४, ९६।

सुप्रसिद्ध कवि भारवि की अमर रचना 'किरातार्जुनीय' की बहुत-सी वस्तुओं एवं विशेषताओं को उन्होंने अपने महाकाव्य में भी प्रयुक्त किया है, किन्तु उनसे बीस कर के, उन्नीस कर के नहीं। कहीं पर उसी रूप और प्रकार का अनुसरण कर के उसे रख दिया है तो कहीं पर बिल्कुल नये ढंग और नयी रीति से उसका मुकाबला किया है। दोनों महाकाव्यों में बहुत-सी बातों की समानता पाई जाती है। कुछ समान वस्तुए इस प्रकार है। दोनों ही ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में 'श्री' शब्द से वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में यदि भारवि ने 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है तो माघ ने वहां भी आरम्भ की तरह 'श्री' शब्द ही प्रयुक्त किया है। भारवि ने किरातार्जुनीय के द्वितीय सर्ग मे यदि भीमसेन के सवाद मे कुछ राजनीतिक चर्चा की है तो माघ ने उससे कही बढ़ कर बलराम और उद्धव के द्वारा राजनीति की बातें कहलायी है। भारवि ने अपने महाकाव्य के तृतीय सर्ग मे अर्जुन के गमन का वर्णन किया है तो माघ ने उसी सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के गमन का वर्णन किया है। इस प्रसग पर दोनों ही कवियों ने पुरनिवासियों की मार्मिक व्यथाओं का बड़ा मनोहर एव आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है। भारवि ने चतुर्थ और पंचम सर्गों मे नगाधिराज हिमालय एव ऋतुओं का वर्णन अनेक प्रकार के छन्दो में सुन्दर ढग मे किया है तो माघ ने भी उन्ही सर्गों मे रैवतक के प्राकृतिक दृश्यो का मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया है। दोनो कवियो ने बडी विचित्र समानता के साथ ऋतु वर्णन के प्रसगों पर तत्तद् वस्तुओं एव उपादानो को ग्रहण किया है। दोनों ने अपने-अपने महाकाव्यो के आठवे सर्गों मे सुन्दरियों की जल-क्रीड़ा का वर्णन तथा नवे और दसवे सर्गो मे सायंकाल, चन्द्रोदय, मधुपान, रतिकेलि, प्रणयालाप आदि का शृंगारपूर्ण एक-सा वर्णन किया है। एक मे यदि वेश्या का प्रसग है तो दूसरे मे भी यादव रमणियां है। दोनो कवियों के प्रभात-वर्णन एक ही परम्परा के अनुयायी हैं। एक में यदि अर्जुन की कठोर तपस्या का हृदयग्राही वर्णन है तो दूसरे मे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का सविधि सविस्तर आकर्षक वर्णन है। दोनो ही महाकाव्यों मे युद्धस्थल एव युद्ध के विविध प्रकारों का रोमांचकारी वर्णन है। युद्धस्थल के प्रसगो पर दोनों ही कवियों ने विविध प्रकार के विकट चित्रबन्धों द्वारा अपनी प्रचण्ड कवित्व-शक्ति एव प्रखर प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। किन्तु इस दिशा मे माघ के प्रयोग भारवि की अपेक्षा बहुत सफल हुए है। विविध चित्रबन्धों की विकट कल्पना मे एक निपुण वैयाकरण के नाते जो कृतकार्यता माघ को मिली है, वह भारवि को नहीं मिल सकी है।

माघ के कुछ विकट बन्धों के नमूने ये है जिन्हे देखकर पाठकों को दांतो तले अँगुली दबानी पड़ती है—

एकाक्षर पाद

> जजौजोजाऽऽजिजिज्जाजी तं ततोऽतितताऽतितुत्।
> भाऽऽभोऽभीभाऽभिभूभाभूराराऽरि ररिरीररः॥[1] सर्ग १९।३।

१—तदनन्तर योद्धाओं के तेज एवं पराक्रम से होनेवाले युद्ध के विजेता, सुन्दर युद्ध करने

इस श्लोक के एक चरण में केवल एक अक्षर का प्रयोग कवि ने किया है, इस प्रकार छन्द के चारों चरणों में केवल चार अक्षरों—ज, त, भ, र—का प्रयोग हुआ है। नीचे के श्लोक में केवल दो अक्षरों का प्रयोग हुआ है—

भूरिभिर्भारिभिर्भीराभूभारैरभिरेभिरे।
भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः॥[1] सर्ग १९।६६॥

अब आगे इससे भी बढ़ कर विस्मयकारी बन्ध देखिए, जिसमें कवि ने केवल एक ही अक्षर का प्रयोग किया है—

दाददो दुद्दुद्दुद्दावी दादादो दूददीददोः।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाऽददददोऽददः॥[2] सर्ग १९।११४॥

यह तो हुई अक्षरों की करामात, अब देखिए श्लोक की पहली पूरी पंक्ति ही दूसरी पंक्ति बन गयी है—

सदैव सम्पन्नवपू रणेषु महोदधेस्तारि महानितान्तम्।
स दैवसम्पन्नवपूरणेषु महो दधेस्तारिमहा नितान्तम्[3]॥ सर्ग १९।११८॥

चरणों या पादों के अनुलोम प्रतिलोम के तो बीसों उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किये हैं। सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, अर्धभ्रमक, असयोग, समुद्गयमक, मुरज-बन्ध, प्रतिलोमानुलोम, गूढ चतुर्थ, तीन अर्थवाची, चार अर्थवाची आदि विकटातिविकट बन्धों की रचना कर कवि ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं अद्भुत कवित्व-शक्ति का जो प्रदर्शन किया है, उसका लोहा संस्कृत-समाज में सदा माना जाता रहेगा। यद्यपि इन बन्धों में सर्वत्र कवित्व-रस का मुक्त प्रवाह दूषित हो गया है, और क्लिष्ट कल्पनाओं एवं बलपूर्वक ग्रहण की जानेवाली अर्थशक्ति का सौन्दर्य घटिया कोटि का हो गया है किन्तु कवि ने जिस दृष्टिकोण से यह 'कठिन कार्य' किया है, उसमें तो वह पर्याप्त सफल माना ही जायगा।

में निपुण, उद्धत वीरों को व्यथित करनेवाले, नक्षत्र के समान कान्तिमान, निर्भीक गजराजों को भी पराजित करने वाले बलराम रथ पर सवार होकर उस वेणुधारी के सम्मुख युद्धार्थ दौड़ पड़े।

१—अत्यन्त भार से युक्त, भयानक, पृथ्वी के भार स्वरूप, भेरी की भाँति भयानक शब्द करने वाले, बादलों के समान काले एवं निर्भय गजराज अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराजों से भिड़ गये।

२—दानशील, दुष्टों को दुःख देने वाले, संसार को पवित्र करने वाले, दुष्टों का विनाश करने वाली भुजाओं को धारण करनेवाले, दाता तथा अदाता—दोनों ही को देनेवाले तथा बकासुर एवं पूतना आदि आततायियों को नष्ट करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने शत्रुओं पर भीषण अस्त्र चलाना शुरू किया।

३—सर्वदा सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त शरीरधारी एवं शत्रु-तेज का दलन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैवी सहायता से युक्त युद्ध में, वह प्रचण्ड तेज धारण किया जो कि महासमुद्र के पार तक पहुँच गया था।

डा० कृष्णकुमार शर्मा

आंगल-भारतीय वैज्ञानिक शब्दकोश : एक दृष्टि

डा० रघुवीर कृत 'आंगल भारतीय वैज्ञानिक शब्दकोश' का अध्ययन करने पर मुझे यह अनुभव हुआ कि लेखक ने 'मघवा' की टीका 'बिडौजा' करने की चेष्टा आद्योपान्त की है। इतना ही नहीं अपितु शब्दरचना में भाषा-विज्ञान, व्यावहारिक-विज्ञान और व्याकरण-ज्ञान की भी नितान्त उपेक्षा की गई है। साधारणीकरण का ध्यान बिल्कुल न रखते हुए क्लिष्ट, कटु-श्रुत तथा व्याकरणगत और अर्थगत अशुद्धियों से भरपूर शब्दों की रचना बड़ी उदारता से की गई है। कोश के अन्तर्गत प्रयुक्त कुछ शब्दों के उदाहरण इस प्रकार है.—

व्याकरणगत अशुद्धियाँ

१. शब्दनिर्माण में सन्धियों के नियमो की अवहेलना की गई है।

उदाहरण

१. Metallic धात्विक
२. Molecular व्यूहाण्वीय
३. Phosphate भास्वीय
४. Phosphoric acid भास्विक अम्ल
५. Phosphorous acid भास्व्य अम्ल
६. Alkaline क्षारिय
७. Wine द्राक्षिरा, इत्यादि

'धात्विक' में 'धातु + इक' के बीच उ को व करके धात्विक बनाया गया है। सन्धि करते समय यह ध्यान नही दिया गया कि 'इक' क्या है। ठञ्, ठक् अथवा ठन् तद्धित प्रत्यय हैं; और उन्हें 'ठस्येकः' सूत्र से 'इक' आदेश होता है। तद्धित प्रत्ययों के परे होने पर उकारान्त शब्दों को ओर्गुणः (अष्टा. ६.४.१४६.) से गुण करना अवश्यंभावी कार्य है। तब 'धातो + इक' हो जाने पर एचोऽयवायावः (अष्टा. ६.४.१४६.) से 'ओ' को 'अव्' आदेश होता है; इस प्रकार 'धातविक' शब्द बनता है।

धात्विक के समान ही व्यूहाण्वीय, भास्वीय, भास्विक और भास्व्य शब्दों के निर्माण में भ्रम हुआ है; इन्हें क्रम से व्यूहाणवीय, भासवीय, भासविक और भासव्य होना चाहिए।

'क्षारिय' शब्द में 'क्षार + छ' है छ को 'ईय' आदेश होता है (आयनेयीनीयिय० अष्टा,

७.१.२.); तब यस्येतिच (अष्टा. ६.४.१४८.) से र के अ का लोप होने पर, 'क्षारीय' बनता है; क्षारिय नहीं। 'Alkaline' का अर्थ है 'Having the properties of an alkali' जो कि तस्मैहितम् (अष्टा.५.१.५.) अथवा तदस्य तदस्मिन् स्यादिति (अष्टा.५.१.१६.) द्वारा 'छ' प्रत्यय करने द्वारा ही निकल सकता है।

यद्यपि 'क्षारिय' शब्द क्षार+घ द्वारा बनाया जा सकता है; पर यह अनुकम्पायाम्, नीतौ च तद्युक्तात्, बह्वचोमनुष्यनाम्नष्टज्वा, घनिलचौ च (अष्टा.५.३.७६-७७-७८-७९) उक्त सूत्रोक्त अर्थों में ही होता है; इसलिए Alkaline शब्द के अर्थ को ध्यान में रखते हुए, सर्वथा असंगत है।

'द्राक्षिरा' में द्राक्षा+इरा, खण्ड है। यहां आद्गुणः (अष्टा.६.१.८७) से गुण होकर 'द्राक्षेरा' बनेगा, द्राक्षिरा नहीं।

२. लिंगों के स्वीकार करने में असली लिंगों की अवहेलना की गई है।

उदाहरण

१. Nerve चेता
२. Pigment रंगा
३. Fulcrum स्कम्भा
४. Battery समूहा

१. चिति संज्ञाने धातु से करणेऽर्थे असुन् प्रत्यय करने से 'चेतस्' शब्द बनता है; जो कि नपुंसक लिंगी है; और जिसके रूप चेतः, चेतसि, चेतांसि के ढंग पर चलते हैं। यहां Nerve के लिए चेता शब्द चुना गया है; जो लिंग सम्बन्धी अशुद्धि को ओझल करते हुए भी, उसके अर्थ का द्योतक नहीं ठहरता। महामहोपाध्याय गणनाथ सेन जी ने Nerve के लिए 'नाडी' शब्द का व्यवहार किया है जो नितान्त उपयुक्त है। यद्यपि संस्कृत-साहित्य में 'नाडी' का साधारण अर्थ 'विवर वाली नली' है; और Nerves में विवर नहीं होता तो भी इस शब्द का Nerve के लिए चुनाव एक विशेष अर्थ रखता है। और वह यह है कि मस्तिष्क और पारिध भागों के बीच, संज्ञा (Sensation) और चेष्टा (Motion) सम्बन्धी संवेग (Impulses) यत्र-तत्र विद्युत् की गति के समान दौड़ा करते हैं। उस अद्भुत गति की अभिव्यक्ति के लिए नाड़ियों में विवरता कही जाती है।

२. रञ्ज् धातु से 'भावे' अर्थ में घञ् प्रत्यय करने से 'रंग' शब्द बनता है; और पुल्लिंग है। उसे स्त्रीलिंग देना भ्रम है।

३-४. यही हाल स्कम्भा और समूहा का भी है। समूहा के बारे में यदि यह कहा जावे कि बहुवचन का रूप दिया है, तो 'समूहाः' होना चाहिए; परन्तु समूहा के बारे में छापे की गल्ती मानते हुए भी, बहुवचन का यहाँ उपयोग अनुचित है; ऐसा उपयोग वाक्य बना-बना कर लिखते समय होता है, अन्यथा नहीं। यहाँ 'माला' 'गण' आदि शब्दों द्वारा 'समुदाय' के अर्थ को बतलाना

ही संस्कृत साहित्य की परिपाटी है। तदनुसार Battery को 'कोष्ठमाला' नाम दिया जा सकता है।

३. तद्धित प्रत्ययों के करने में अर्थों का ध्यान नहीं रखा गया है, अपने सुभीते के अनुसार प्रत्ययों का चयन हुआ है।

उदाहरण

१. Hepatic याकृत

२. Ciliary याक्ष्म

शरीर के किसी अंग अथवा अवयव से 'भवः', 'हितम्' आदि अर्थों में यत् प्रत्यय होना चाहिए। देखिए शरीरावयवाच्च और शरीरावयवाद्यत् (अष्टा. ४.३.५५ तथा ५.१.६)। इस प्रकार

यकृत् + यत् = यकृत्य

'याकृत' में यकृत् से अण् प्रत्यय किया गया है, जो कि इदम्, विकार, समूहः आदि अर्थों में होना है। ये अर्थ यहाँ सगत नहीं है।

'याक्ष्म' में भी यही गल्ती है। 'यक्ष्मन्य' होना चाहिए।

३. अनेक स्थलों पर नये शब्दों की रचना के लिए, अन्य शब्दों को तोड़कर उनके खण्ड-खण्ड करके, भिन्न-भिन्न शब्दो के खण्डों को जोड़ा गया है। यह विधि किसी सीमा तक तो उपादेय है; जो सीमा व्याकरण मे दर्शायी तथा स्वीकृत की गयी है; परन्तु सीमा का उल्लंघन करने पर जो नयी सृष्टि शब्दों की होती है, वह अत्यन्त कर्कश और अर्थहीन दिखलायी पड़ती है। उसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो हम संस्कृत भाषा नहीं पढ रहे। यह विधि, अतएव, घृणास्पद समझनी चाहिए।

उदाहरण

१. Sodium क्षारातु
२. Magnesium भ्राजातु
३. Aluminium स्फट्यातु
} Metal धातु

४. Helium यानाति
५. Nitrogen भूयाति
६. Argon मन्दाति
} Gas वाति

७. Graphite लिखिज (लिख + खनिज) - लिख + इज = लिखिज

८. Methyl प्रोद्ल (प्रांगार + उदजन + मूल)

९. Methane प्रोदीन्य (प्रांगार + उदजन + इन्य)

१०. Merozoite बीखण्ड (बीजाणु + जीव + खण्ड)

११. Kerosene समुप्रतैल (सं (together) + उ (Hydrogen) + प्र (Carbon)

१२. Papain एरंटि (एरण्ड कर्कटी)
१३. Poundal प्राबल (प्राजलि + बल)
१४. Calomel पारनीरेय (पारद + नीरेय)
१५ Bunsen flame पिनाल ज्वाला

१. 'क्षारातु' शब्द क्षार + धातु से बना है। कदाचित् संक्षिप्त करने के लिए धातु का 'ध' निकाल दिया गया है, और क्षार + आतु मानकर क्षारातु की सृष्टि की गयी है।

धातु का ध साहित्य अथवा व्याकरण के किस नियम से उड़ा दिया गया है, ज्ञात नहीं होता। देखिए व्याकरण के नियम 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादच' (अष्टा ५ ३ ८३) और इस पर दिये गये कात्यायन के वार्तिक। इस प्रकार शब्दो के टुकड़ों को यथेच्छ लुप्त कर देना सस्कृत भाषा की हिंसा है, जो कदापि वाछनीय नही।

२-३ भ्राजातु और स्फट्यातु भी इसी प्रकार गढे गये हैं।

४ यानाति शब्द यान + वाति से बना है। यहा भी वाति का 'व' उड़ा दिया गया है अर्थात् 'यान + आति' मान लिया गया है, जिन्हे जोडकर यानाति बना है। भूयाति और मन्दाति म भी यही कल्पना है, जो कि पूर्ववत् हेय है।

'प्रोदल' आदि शब्दो के साथ-साथ हमने, उनसे सम्बद्ध भिन्न-भिन्न शब्द और उनसे कौन-कौन से खण्ड परस्पर जोडे गये है, दर्शा दिया है। पाठक हृदयगम कर ले।

Bunsen Flame को कोश में स्पष्ट नहीं किया गया है, यह नहीं बतलाया गया कि उसके लिए चुना हुआ शब्द 'पिनाल ज्वाला' किन-किन शब्दो के खण्डो का जोड है। हमारी सम्मति में यह 'पिनद्ध + नाल + ज्वाला' से बना है। पिनद्ध का 'नद्ध' निकाल दिया गया है, और शेष परस्पर जोड दिया गया है।

५ अनेक स्थलो पर 'उपसर्ग + धातु' के यथार्थ अर्थ न लेकर मनमाने अर्थ ले लिये गये है। सस्कृत व्याकरण और साहित्य मे यह माना गया है कि धातुओ के साथ (पूर्व में) जब किसी उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है, तब वह उपसर्ग, धातु के अर्थ को बहुधा बदल देता है। देखो उपसर्गेणधात्वर्थो बलादन्य प्रतीयते ० कारिका। उपसर्गों के अर्थ निश्चित है, और वे धातुओ के साथ जुड कर उनके अर्थों मे अपने अर्थानुसार परिवर्तन कर देते है। जो परिवर्तन वे कर देते है वे भी निश्चित हैं, उन्हें हम स्वेच्छानुसार नही बदल सकते। इस कोश में वे स्वेच्छानुसार बदल दिये गये है।

उदाहरण

१ Decomposition विबन्ध
२. Adsorption अधिचूषण

१. 'वि' उपसर्ग के अनेक अर्थों में से दो अर्थ एक दूसरे से उल्टे है, अथवा, यो कहिए कि उन अर्थों में कभी-कभी विरोधी भावो का भान होता है: (१) पृथग्भाव (२) अत्यधिक।

उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जावेगा। पृथग्भाव के उदाहरण हैं : वियोग, विचलन आदि। अत्यधिक के उदाहरण हैं : विध्वंस, विधान, विप्लव आदि। भिन्न-भिन्न धातुओं के साथ, इन दोनों में से एक अर्थ निश्चित है, जैसे कि 'वियोग' शब्द में पृथग्भाव का अर्थ स्पष्ट रूप से लागू होता है। हम वियोग का अर्थ 'अत्यधिक योग' अथवा 'विशेष रूप से योग' नहीं कर सकते। यदि 'वि' का अर्थ यहाँ 'अत्यधिक' लें, तो 'संयोग' अर्थ हो जावेगा, जो कि 'वियोग' से सर्वथा प्रतिकूल है।

कोश में Decomposition के लिए विबन्ध शब्द चुना गया है। Decomposition का अर्थ Medical dictionary के अनुसार Analysis of a body है। इससे विपरीत, विबन्ध शब्द का अर्थ व्याकरण और साहित्य में 'वि' का दूसरा अर्थ, अर्थात् 'अत्यधिक' मानकर किया जाता है। तदनुसार ही माधवनिदानम् में विबन्ध का अर्थ 'मलबन्ध' किया गया है।

परन्तु यहाँ विबन्ध का अर्थ 'वि' के पृथग्भाव अर्थ के साथ किया गया है, जो नितान्त भ्रममूलक है।

२. अब 'Adsorption' को लीजिए। Medical Dictionary by Gould में Adsorption का अर्थ यह दिया है: The process whereby a substance becomes a part of another and remains in a state midway between mechanical mixture and chemical combination.'

इसे ध्वनित करने के लिए कोश के लेखक ने 'अधिचूषण' शब्द चुना है। धातुओं के पहले जोड़ा हुआ 'अधि' उपसर्ग 'ऊपर' और 'आधिक्य' अर्थों का द्योतक होता है; और धातुओं के स्वकीय अर्थों की तीव्रता को बतलाता है। देखिए गणरत्नमहोदधि। Adsorption के अर्थ को ध्यान में रखते हुए, यहाँ हमें 'ऊपर', 'आधिक्य' आदि अर्थों को नहीं दर्शाना है।

'अधि' की जगह यहाँ 'अव' उपसर्ग अधिक समुचित है। धातुओं के पूर्व जोड़ा हुआ 'अव' उपसर्ग, उनके स्वकीय अर्थ में अनादर, छोटापन, परावलम्बन के भाव प्रकट करता है। देखिए संस्कृत इंगलिश कोश—आप्टे। ये अर्थ Adsorption सम्बन्धी Incapacity to complete chemical combination को दर्शाने के लिए समर्थता प्रदान करता है। वस्तुतः चुष् धातु के बदले शुष् धातु का प्रयोग होना चाहिए। जिसका अर्थ सूखना, सुखाना, ससूकना है। अव पूर्वक शुष् धातु से 'अवशोषण' शब्द बनता है, जो Adsorption के अर्थ को 'अधिचूषण' की अपेक्षा अधिक अनुरूपता से दर्शाता है।

६. नाम धातुओं का प्रयोग संस्कृत साहित्य में अत्यन्त कम मिलता है; अर्थात् नगण्य-सा है। कोशलेखक ने इनका प्रयोग उदारभाव से किया है; और विशेषणों, क्तान्त शब्दों आदि को भी धातु मानकर 'ल्युट्' प्रत्यय करके, अपना अभिप्राय सिद्ध किया है।

उदाहरण

Bleach श्वेतन
Blende अन्धन
Subject to अधीनन
Depression निम्नन
Liquefaction तरलन
Fermentation किण्वन
Boiling बुद्बुदन

जैसे अंग्रेज लोग, भारतवासियों की अंग्रेजी को, यद्यपि वह अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार अधिकतर शुद्ध भी होती है, तो भी बहुधा Unenglish कहा करते हैं; उसी प्रकार 'इन' तथा 'इन' से मिलते-जुलते अन्य शब्दों को 'असंस्कृत' कह देना असंगत नहीं है। अधिकतर वैय्याकरण उक्त शब्दों को अत्यन्त अशुद्ध कह देने में नहीं हिचकेंगे; इसलिए ऐसे शब्दों का चुनना हेय है, और पतन का कारण बन सकता है।

७. औणादिक प्रत्यय अप्रसिद्ध शब्दों के निर्माण में प्रयुक्त किये गये हैं और उनका प्रयोग भी अधिकतर अशुद्ध हुआ है।

उदाहरण

Accumulator सचेत्र

यहाँ 'सञ्चिनोत्यनेन' इस अर्थ में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय किया गया है, (उणादिसूत्र सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्)। वस्तुतः Accumulator में जो 'or' प्रत्यय है, उसके लिए संस्कृत व्याकरण में साधारणतया ण्वुल् अथवा तृच् प्रत्यय किये जाते हैं (देखिए अष्टा. ३.१.१३३)

८. वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले शब्द, लौकिक साहित्य में प्रयुक्त किये गये हैं।

उदाहरण

Posterior पश्च
Posterior chamber पश्च वेश्म
Posterior part पश्च भाग
Posterior wall पश्चभित्ति
Postscript पश्चलेख

'पश्च' शब्द का स्वतंत्र रूप से प्रयोग केवल वैदिक साहित्य में होता है; लौकिक संस्कृत साहित्य में नहीं। (देखिए, पश्चपश्चा चच्छन्दसि, अष्टा. ५.३.३३)। केवल एक स्थल पर 'अपर' शब्द को 'पश्च' आदेश करने का आदेश दिया गया है। (देखिए, अपरस्यार्धे पश्चभावो वाच्यः, अष्टा. २.१.५८ सूत्र पर कात्यायन वार्तिक)।

Posterior और post के लिए पश्चिम, पश्चात् आदि शब्द बिना किसी काठिन्य के चुने जा सकते हैं।

९. कृत् प्रत्ययों और सन्धियों का अशुद्ध प्रयोग हुआ है।

उदाहरण

Stoppered bottle पिधित कूपी

'पिहितकूपी' होना चाहिए। (देखिए, दधातेर्हि, अष्टा. ७.४.४२)

अर्थगत अशुद्धियाँ

१. प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की अवहेलना की गयी है। जो शब्द वैद्यक शास्त्र के ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें प्रयोग में न लाकर, उनकी जगह नये शब्द बनाने का यत्न किया गया है।

उदाहरण

Beer यविरा, यवसुरा
Calomel पार्नारेय
Alcohol सुषव

Beer के लिए 'यव सुरा' और 'यविरा' दो शब्द कोशलेखक ने दिये हैं। 'यविरा' शब्द 'यव + मदिरा' को संक्षिप्त कर के बनाया है। 'यवसुरा' में 'सुरा' शब्द का प्रयोग अशुद्ध हुआ है। वैद्यक साहित्य में 'सुरा' शब्द चावलों से तैयार की गयी शराब के लिए हुआ है। (देखिए हिन्दी शब्द सागर—नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सकलित) Beer, जौ और चावलों के मेल से नहीं बनायी जाती। लेखक को 'यव सुरा' के बदले 'यवमद्य' कहना चाहिए।

'यविरा' शब्द का निर्माण लेखक की संक्षिप्त करने की विधि के अनुसार हुआ है, जो व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है।

Calomel के लिए 'पार्नारेय' शब्द दिया है, जो लेखकानुसार 'पारद + नीरेय' का संक्षेप है। यह संक्षेप विधि तो व्याकरण और तर्क हीन है ही, इसके साथ-साथ, भारतीय प्राचीन रसायनज्ञों को Calomel का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से है, और इसके लिए 'रस' विषय पर लिखी प्रत्येक पुस्तक में 'रसकर्पूर' शब्द आया है, तब नये शब्द चुनने की क्या आवश्यकता हुई, यह समझ में नहीं आता।

Alcohol के लिए 'सुषव' शब्द चुना गया है। 'षव' शब्द षुञ् + अप् से बनाया गया है। सुष्ठुषवः, सुषवः; जिसका अर्थ हुआ 'अच्छी प्रकार की गयी अभिषव क्रिया।' इसलिए 'सुषव' शब्द Alcohol के अभिप्राय को नहीं दर्शाता। इसके अतिरिक्त, इसके लिए 'मद्यसार' शब्द का व्यवहार, जहाँ-तहाँ होता है; इसलिए ऐसे पदार्थ के लिए नये शब्द की सृष्टि अनुचित और अप्रासंगिक है।

२. शब्दों का चयन, अंग्रेजी के जिन शब्दों के लिए, उन्हें चुना गया है, उनके अर्थों का अधिक से अधिक अर्थ द्योतन करनेवाला होना चाहिए; परन्तु इस तथ्य को अनेक स्थलों पर ओझल कर दिया गया है।

उदाहरण

Aether (१) दक्षु (२) व्योम
Oxalic acid तिमिकाम्ल

Medical Dictionary by Gould ने Aether (Ether) के दो अर्थ दिये हैं: (१) A thin colourless, volatile fluid used as an anaesthetic (2) The subtle fluid filling all space. कोश के लेखक ने दोनों अर्थों को दर्शाने के लिए भी पृथक्-पृथक् शब्द चुने हैं। (१) दक्षु (२) व्योम।

दक्ष् का अर्थ 'Burning' है (देखिए, S. E. Dictionary by Apte) और इसीलिए इसे Ether के लिए चुना गया प्रतीत होता है; क्योंकि Ether बड़ी जल्दी आग पकड़ लेता है। प्रश्न यह है कि अति शीघ्रता से अग्नि पकड़ लेने का काम क्या Ether के लिए कोई असाधारण काम है, जो अन्यत्र नहीं पाया जाता। अनेकानेक पदार्थ ऐसे है, जो अति शीघ्रता से जल पड़ते है, इसलिए केवल इतने ही गुण को देखकर किसी पदार्थ का व्यावहारिक नाम 'दक्षु' रख देना युक्तिहीन है। इसके अतिरिक्त, 'जल पडना' Ether का मूल गुण नहीं है। शब्द यथासंभव ऐसा चुनना चाहिए, जो पदार्थ के प्रमुख गुणों को, जिनमें उसकी रचना आदि का संकेत भी सम्मिलित हो, प्रकट करता हो। यह बात रसायनज्ञों से छिपी नहीं है, कि Alcohol और Ether का वही सम्बन्ध है, जो धातुओं के Hydroxides का उनके oxides से होता है।

Sodium Hydroxide	Sodium Oxide
NaOH	Na_2O
Ethyl alcohol	Ethyl ether
C_2H_5OH	$C_2H_5OC_2H_5$

दूसरे शब्दों में Alcohol की रचना में जो 'OH' मूलक है, उसके बदले में Ether की रचना में 'O' मूलक रह जाता है। Ether के रासायनिक अर्थ को दर्शाने के लिए, इसलिए, ऐसा शब्द होना चाहिए, जो Alcohol के प्रमुख गुणों को दर्शाते हुए भी अपनी विशेषता का सूचक हो। एतदर्थ 'मदोष' का चयन अधिक उपयुक्त है। 'मद' शब्द 'मद्य' के गुणों का द्योतक है, और 'ओष' Ether की रचना में ओषजन (Oxygen) की उपस्थिति दर्शाता है। कोशलेखक ने Ether के दूसरे अर्थ को बतलाने के लिए 'व्योम' शब्द स्वीकृत किया है। एतदर्थ

'आष्ट्र' शब्द अधिक भावसूचक है । (देखिए Siddhant Kaumudi, English version by Basu brothers)

Oxalic acid के लिए 'तिग्मिकाम्ल' शब्द बनाया गया है । 'तिग्म' का अर्थ है तेज, क्रूर, उष्ण, कटु आदि (देखिए S. E. Dictionary by Apte) तदनुसार यह अम्ल उक्त गुणों वाला पता लगता है; पर ये गुण oxalic acid के मिले हुए नहीं हैं; अनेक पदार्थों के ये गुण हैं। जैसा कि हमने ऊपर बतलाया है, नामों को यथासम्भव पदार्थों की उत्पत्ति, रचना आदि का द्योतक होना चाहिए।

Organic Chemistry by Cohen के अनुसार, यह अम्ल woodsorrel (oxalis acitosella) में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। woodsorrel को संस्कृत भाषा में 'चुक्र' नाम से पुकारा गया है; तदनुसार इस अम्ल को 'चुक्रिकाम्ल' नाम देना, 'तिग्मिकाम्ल' नाम की अपेक्षा अधिक सार्थक है ।

शब्दशैथिल्य

३. शब्दनिर्माण के यत्न में यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि यथाशक्ति सब भावों और अर्थों और शब्दसौष्ठव पर भी गहरी निगाह डालते हुए, चुना हुआ शब्द 'संक्षिप्त' हो। शब्द का लम्बा चौड़ा और ढोला-ढाला होना, उसकी ग्राह्यता में काँटा बन जाना है। कुछ स्थलों में कोशलेखक ने इस पर ध्यान नहीं दिया है।

उदाहरण

Boyle's law समताप–वाति सम्पीडन नियम
Charle's law ताप–वाति परिमा नियम
Mericasp एक बीजा स्फोटि वेश्म

Boyle's और Charle's laws के लिए बड़े-बड़े ढीले-ढाले शब्दों का चयन हुआ है। विज्ञान के जिन पिताओं ने अपने जीवन का अमूल्य समय लगा कर, सब सुखों और ऐश्वर्यों का त्याग कर के, छिपे हुए सत्यों को, आधुनिक काल में, सब से प्रथम दर्शाया, क्या उनका नाम लेना भी पाप हो गया है। यदि हम ऐसा करते हैं, तो हमारे जैसा क्रूर, पक्षपाती और अकृतज्ञ अन्य कोई न होगा। इसलिए हमें उक्त पिताओं को उन नियमों के साथ अमरभाव से स्मरण करना चाहिए। तब Boyle's law और Charle's law के लिए उचित शब्द क्रमशः बायल का नियम (बायल्योक्त नियम) और चार्ल्स का नियम (चार्ल्सोक्त नियम) होने चाहिए।

Mericasp के लिए भी शब्द का ढोलाढालापन अखरता है।

Class book of Botany by A.C. Dutta ने 'Mericasp' का अर्थ यह दिया है: In schizocarp, when ripe, the fruit splits apart into two, indehiscent, one sided pieces, called Mericasps, उक्तार्थ को ध्यान

में रखते हुए 'एक बोजा स्फोटि वेश्म' से अधिक संक्षिप्त शब्द 'फलभंगिका' है; जो फल के टूटने और उससे सम्बद्ध दोनों हिस्सों को सूचित करता है।

शब्दसौष्ठवहीनता

४. किसी भी भाषा के साहित्य में 'शब्दसौष्ठव' एक महान् गुण है; कर्कश और बेडौल शब्दों की अधिक संख्या भाषा के महत्त्व को गिरा देती है। संस्कृत भाषा में तो शब्दों का अपार समुद्र विद्यमान है; तब कठोर, कर्कश शब्दों का चुनना कोई अर्थ नहीं रखता। हम आपके सामने कोशलेखक के चुने हुए कुछ कर्कश शब्दों को दर्शा रहे हैं।

उदाहरण

Phenolphthalein दर्शवव्युर्नेलिन
Protein प्रोभूजिन
Proteid प्रोभूजेय

'दर्शवव्युर्नेलिन' की कर्णकटुता, शब्दसौष्ठवहीनता और असंस्कृतता अनुपम है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक शब्दों को तोड कर, और उनके किन्हीं खण्डों को जोड़ कर, इस शब्द की रचना हुई है। हम ऊपर कह आये हैं कि यह विधि अत्यन्त हेय है।

'Phenolphthaen' शब्द, दो शब्दों से मिल कर बना है—Phenol और Phthalein, जिनके लिए अधिक सार्थक शब्द क्रमशः 'भासेरा' और 'किशिलाजिनी' हैं। ये शब्द कहाँ से आये, अथवा कैसे बने, सुनिए।

Phenol शब्द में Phenu=To illuminate और 'ol' खण्ड हैं। 'ol', Organic chemistry में ऐसे शब्दों के साथ अधिकतर जोड़ा जाता है, जिनमें Alcohol की रचना के समान 'OH' मूलक पाया जाता है। कुछ ऐसे भी शब्द है, जहाँ उक्त कथन का पालन नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ तैलपना (चिकनाई का भाव) दिखलाने के लिए भी यत्र-तत्र 'ol' खण्ड का प्रयोग होता है, जैसे 'Encalyptol (में 'ol' तैल का अर्थ देता है।

Phenol में प्रथम अर्थ ग्रहण किया गया है। 'भासेरा' शब्द में 'भास' और 'इरा' दो शब्द हैं। भास दीप्तौ धातु से 'भासत इति भासः', सिद्ध होता है, जो Illumination के अर्थ को ध्वनित करता है। 'इरा' शब्द मद्य, जल आदि अर्थ देता है। (देखिए धन्वन्तरीय निघण्टु, राजनिघण्टु, तथा S E Dictionary by Apte.)। इसलिए मद्यता का संकेत करने के लिए 'इरा' शब्द चुना गया है। Illumination के अर्थ का समाधान देते हुए Cohen अपनी Organic chemistry पृष्ठ संख्या ३९३, संस्करण १९४३, में कहते हैं "The term phenyl denotes the univalent radical $C6H_5$' of Benzene. The name is derived from the Greek divw, to illuminate, from the connection of Benzene with the coal

gas manufacture." तदनुसार 'भास + इरा' से 'भासेरा' शब्द बनता है, जो अपनी सार्थकता को स्वयं प्रतिपादित करता है।

Phthalein, organic chemistry के वे पदार्थ हैं, जो Naphtha से सम्बद्ध Naphthalene से बनाये जाते हैं; जिस तथ्य को दर्शाने के लिए ही Phthalein शब्द में 'Phtha' खण्ड रख दिया गया है। Naphtha की उत्पत्ति Petroleum से होती है। (देखिए पृष्ठ संख्या ५७ Organic chemistry by Cohen, edition 1943) S.E. Dictionary by Apte में Petroleum के लिए 'शिलाज' शब्द दिया है। उपर्युक्त अर्थ को अधोलिखित रीति से अधिक स्पष्ट दर्शाया जा सकता है:—

Petroleum → Naphtha → Naphthalene → Phthalein
शिलाज → किशिलाज → किशिलालीन → किशिलाजिनी

'किशिलाज' में 'कि' शब्द कुत्सित अर्थ में जोड़ा गया है, अर्थात् कुत्सित. शिलाज इति 'किशिलाज.। (देखिए किंक्षेपे, अष्टा: २.१.६४)। कुत्सित शब्द यहाँ आक्षेप अर्थ में नहीं लिया गया है; वह विकारता, परिवर्तन और भिन्नता को दर्शाने के लिए है। 'किशिलालीन' में प्रथम किशिलाज के 'ज' को लुप्त कर दिया है (देखिए विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोप.—कात्यायन वार्तिके) और फिर 'लीन' शब्द के साथ सप्तमी तत्पुरुष समास कर दिया गया है जो किशिलाज से उसका सम्बन्ध दर्शाता है। 'किशिलाजिनी' में किशिलाज शब्द से मत्वर्थ ठन् प्रत्यय किया गया है। (देखिए अत इनठनौ, अष्टा. ५-२-११५)।

Protein को 'प्रोभूजिन' शब्द दिया है, जो प्र (carbon-प्रागार) + उ Hydrogen—उदजन) + भू (Nitrogen—भूयाति) + ज (Oxygen-जारक + इन) को मिला कर बनाया गया है।

कैसा अद्भुत शब्द बना है, जिसे गणेश जी के समान भिन्न-भिन्न स्थलों से धड़ और मुण्ड जोड़ कर बनाया गया है। इसको संस्कृत का शब्द कहा जावे, या किसी अज्ञात भाषा का? नये शब्द बनाने की यह कितनी गर्हित विधि है, और शब्द और अक्षर संकरता का आदर्श नमूना है। (इसका खण्डन देखिए व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धि संख्या ४)।

Protein के लिए अत्यन्त सरल शब्द 'पालिक' है, जो 'पल' शब्द से शीलम् अथवा रक्षति अर्थ में ठक् प्रत्यय करने से सिद्ध होता है (शीलम् अष्टा. ४।४।६१) रक्षति (अष्टा. ४।४।३३)। 'पल' शब्द का अर्थ है मांस। मांस शब्द का अधिक विस्तृत अर्थ यहाँ अपेक्षित है। साधारणतया जानवरों के शरीर का बहुत बड़ा भाग मांस कहलाता है; परन्तु कोशकारों ने फलों के खाद्य भाग को भी मांस शब्द से पुकारा है। (देखिए S.E. Dictionary by Apte) उन्होंने 'मांसम्' के तीन अर्थ दिये हैं (१) Flesh (२) Flesh of fish (३) The fleshy part of a fruit। उक्त अर्थों को स्वीकार कर लेने पर—जिस पदार्थ की प्रकृति (स्वभाव) पल है, अथवा जो पल (मांस) की रक्षा करता है, वह सभी 'पालिक' कहलाता है।

Protein और Protied के अर्थों में कोई अन्तर नहीं (देखिए Medical Dictionary by Gould) इसलिए इसके लिए अलग से शब्द-रचना अनावश्यक है।

यदि 'पालिक' शब्द से सन्तोष न हो, तो Protein के शब्दार्थ से शब्द बना लीजिए। Protein का अर्थ है First place (Cohen); इसलिए इसे 'प्रथमिका' या 'प्रष्ठिका' कहा जा सकता है। 'प्रष्ठ' का अर्थ है 'अग्रगामी।' (देखिए प्रष्ठोऽग्रगामिनि-अष्टा. ८.३.९२)।

शब्द-चयन सम्बन्धी अशुद्धियाँ

५ कोश के लेखक ने अनेक स्थलो पर शब्दों का चयन अशुद्ध किया है; इसका कारण कदाचित् पूरी छानबीन किये बिना लिख डालना हो।

उदाहरण

१. Flat चिपिट
२. Freezing श्यान
३. Funnel निवाय
४. Bacterium वाताणु
५. Gas वाति
६. Cylinder रम्भ
७. Hormone न्यामर्ग
८. Ice हिम
९. Snow शीन
१०. Incision भेदन
११. Oxygen जारक
१२. Ketone शौक्न
१३. Lung fluke क्लोम पत्र
१४. Manometer वाष्पमापक
१५. Filter पाव
१६. Sucrose मण्डधु
१७. Saccharose शर्कराधु
१८. Tincture निष्कर्ष
१९ Uriniferous tubule मूत्रनलिका
२०. Vertebra कीकस
२१. Volt द्युशक्म
२२. Ampere द्युवहि
२३. Calorie उष

१. 'चिपिट' या 'चिपट' का अर्थ है 'चपटी नाक वाला'। (देखिए इनच् पिटच्चिकचि च— अष्टा. ५.२.३३) अर्थात् 'नि' से नत नासिका के अर्थ में इनच् और पिटच् प्रत्यय और नि को 'चिक' और 'चि' आदेश होते हैं। इसके अतिरिक्त 'भावप्रकाशकार' ने 'चिपिट' का प्रयोग 'चपटे चावल' (एक प्रकार का चिऊड़ा) अर्थ में किया है। लेखक ने कदाचित् हिन्दी के 'चपटा' शब्द में 'चिपिट' का मिलान देखकर, इसका Flat अर्थ कर दिया है। Flat के लिए संस्कृत भाषा में 'सपाट', 'सम' आदि अनेक शब्द हैं।

२. Freezing के 'जमने की क्रिया' अथवा 'जमते हुए' अथवा 'जमाने के लिए जो काम में लाया जावे', अर्थ हैं। इसके लिए 'श्यान' शब्द चुना गया है; श्यैङ् धातु से क्त प्रत्यय करने पर, द्रव मूर्ति (जमना) और कठिन स्पर्श अर्थों में 'य्' को सम्प्रसारण करने पर और अस्पर्श अर्थ में क्त के त को न कर के तथा दीर्घ कर के 'शीन' शब्द सिद्ध होता है (देखिए, द्रवमूर्ति

स्पर्शयोः श्यः, श्यो ऽस्पर्शे, हलिच—अष्टा. ६.१.२४, ८.२.४७, ८.२.७७)। यदि 'अभि' या 'अव' उपसर्ग पूर्व में हों तो विकल्प से सम्प्रसारण होता है (देखिए विभाषाभ्यवपूर्वस्य—अष्टा. ६.१.२६) तब, अभिश्यान, अभिशीन, अवश्यान, अवशीन—शब्द बनते हैं। अकेली श्यैङ् धातु से क्त प्रत्यय करने पर 'श्यान' किसी भी अवस्था में नहीं बनता।

Freezing का भाववाची अर्थ देने के लिए भाववाची 'घञ् अथवा 'ल्युट्' प्रत्यय करने से श्यायः और श्यायन—शब्द बनते हैं। इसलिए श्यान के बदले श्याय या श्यायन होना चाहिए।

३. Funnel के लिए 'निवाप' शब्द दिया है। निवाप का संस्कृत साहित्य में अर्थ है 'पितरों को दिया हुआ अन्नादिक' (देखिए—मालती-माधव ९.४०, मुद्राराक्षस ४-५, मनुस्मृति ३.२१६)। इसलिए 'निवाप' शब्द Funnel के लिए नहीं चुना जा सकता। इसके लिए S. E. Dictionary by Apte में 'कूपिका' शब्द दिया है, जो उपयुक्त है। 'च्यवनी' शब्द भी Funnel के अर्थ को स्पष्ट करता है।

४. Bacterium के लिए 'शाकाणु' शब्द चुना गया है। S E. Dictionary by Apte में 'शाक' का अर्थ दिया है:— A vegetable, potherb, herb, any edible leaf, fruit or root, used as a vegetable, शाक, वनस्पति के अन्तर्गत है, पर वनस्पति, शाक के अन्तर्गत नहीं है। 'वनस्पति' शब्द यद्यपि विशेष रूप में उन पेड़ों के लिए प्रयुक्त होता है, जो बिना कली-फूल के फल देते हैं; पर साधारण अर्थों में भी इसका प्रयोग होता है। (देखिए कुमार सम्भव ३-७४)। 'द्रुम' वनस्पति का पर्यायवाची है, और छोटा शब्द है, इसलिए Bacterium के लिए 'शाकाणु' के बदले 'द्रुमाणु' शब्द को चुनना चाहिए।

५. Gas के लिए 'वाति' शब्द दिया है। 'वा' गतिगन्धनयोः, धातु से क्तिन् प्रत्यय करने से 'वाति' शब्द बनता है; अथवा 'वा' धातु से लट् लकार में तिप् करने से भी 'वाति' बनाया जा सकता है। पहले 'वाति' का अर्थ हुआ बहने या गन्ध देने की क्रिया; और दूसरे का अर्थ हुआ, 'बहता है'। ये दोनों अर्थ Gas के अर्थ के दर्शक नहीं हैं। Medical Dictionary by Gould के अनुसार Gas का अर्थ है 'An aeriform substance.'

हिन्दी शब्द सागर (नागरी प्रचारिणी सभा) ने Gas के लिए 'अतिवाष्प' शब्द चुना है, जो युक्तिसंगत है। वाष्पमतिक्रामतीति—अतिवाष्पः। जो गणों में वाष्प का भी अतिक्रमण कर जावे, ऐसा पदार्थ 'अतिवाष्प' कहलाता है।

६. Cylinder के लिए 'रम्भ' दिया है, जिसका अर्थ है (१) Sounding, Roaring (2) Support, prop (3) A stick (4) Bamboo (5) Dust (S. E. Dictionary by Apte) इनमें से तो कोई भी अर्थ ठीक नहीं बैठता। इसके विपरीत Cylinder के लिए हिन्दी में प्रतिदिन 'बेलन' शब्द का प्रयोग होता है, जिसकी संस्कृत 'वेल्लन' है।

७. Hormone के लिए 'न्यासर्ग' शब्द दिया है। 'न्यासर्ग' शब्द 'नि+आङ्+सर्ग' से बना है। 'नि' उपसर्ग का अर्थ धातुओं के पूर्व में जोड़ने से 'नीचे की ओर गति' होता है। 'आङ्' का अर्थ इन्हीं अवस्थाओं में 'समीपता' की सूचना देता है। सर्ग का अर्थ, त्याग, सृष्टि, निश्चय, स्वाभाविक गुण हैं— S. E. Dictionary by आप्टे)। इन सब अर्थों को जोड़ने पर Hormone के अर्थ का अनुभव नहीं होता। Medical Dictionary by Gould में Hormone का निम्नलिखित अर्थ दिया है: A chemical substance produced in a more or less distant organ, which passing into the blood-stream and reaching a functionally associated organ, is capable of exciting the latter to activity यह अर्थ 'न्यासर्ग' से किसी दशा में भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

इसके लिए 'सशान्तवृत्' उपयुक्त है। इसमें 'स' समानार्थवाची है। वस्तुतः समान का 'स' आदेश हो गया है। (देखिए समानस्यच्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु—अष्टा. ६.३.८४)। समान (सजातीय) शान्त, (अंगमवयव वा) यश्चोदयति, प्रचोदयति स 'सशान्तवृत्'।

८-९. Ice के लिए 'हिम' और snow के लिए शीन' शब्द दिया गया है। 'शीन' का अर्थ है 'जमा हुआ', और snow का अर्थ है congealed vapour falling in white flakes अतः शीन और snow के अर्थों का कोई समता नहीं है। कदाचित् snow और शीन में स, श का सादृश्य देख कर, ऐसा शब्द चुनने की प्रवृत्ति हुई हो। संस्कृत साहित्य में snow के लिए 'हिम' शब्द का प्रयोग होता है— (S. E Dictionary by Apte)।

Ice का अर्थ है Frozen Water। इसके लिए संस्कृत साहित्य मे 'हिमानी' शब्द आता है। (देखिए कात्यायन वार्तिके—'हिमारण्ययोर्महत्वे')।

१०. Incisionके लिए 'भेदन' शब्द लिखा है। Medical Dictionary by Gould के अनुसार Incision का अर्थ है The act of cutting into ; जिसे हिन्दी में 'चीरना' और संस्कृत में छेदन कहते है। सुश्रुताचार्य के अनुसार अस्त्रक्रिया ८ प्रकार की होती है— छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, मेषण, आहरण, विश्रावण और सीवन। सबसे पहला कर्म 'छेदन' है, जिसे हिन्दी मे 'नश्तर लगाना' कहते हैं। नश्तर द्वारा चीरा लग जाने पर दूसरी प्रक्रिया 'भेदन' (फाड़ना) का समय आता है; जिसके लिए कोई कैंची सरीखा शस्त्र चीरे मे प्रविष्ट करके, उसे खोलते हैं, जिससे चीरे का छेद बड़ा हो जाता है। यही 'भेदन कर्म है। इसलिए Incision के लिए 'छेदन' शब्द चुनना चाहिए।

११. Oxygen के लिए 'जारक' शब्द दिया है। 'जारक' शब्द जृ वयोहानौ धातु से ण्वुल् प्रत्यय करके बनाया गया है; जिससे इसका अर्थ 'जीर्ण करने वाला' है। इससे विपरीत Oxygen का अर्थ Medical Dictionary by Gould के अनुसार अधोलिखित है: Oxygen is a gaseous element, the supporter of life and combu-

stion. उक्त अर्थों को ध्यान में रखने से स्पष्ट दीखता है कि Oxygen के लिए 'जारक' शब्द सर्वथा असंगत है। वस्तुतः ऐसी त्रुटि के होने का कारण वैद्यक शास्त्र की प्रक्रियाओं का ठीक-ठीक अर्थ न समझना ही है। वैद्यक शास्त्र में भस्मों के निर्माण के समय पदार्थों को कई प्रक्रियाओं में से गुजारना पड़ता है। उनमें अन्तिम दो प्रक्रियायें, जारण और मारण हैं। जारण का अर्थ है जरावाला (वृद्धावस्था वाला) बना देना, और उससे अगली (अन्तिम) प्रक्रिया मारण है; जिस का अर्थ है मार डालना। योरोपीयन विचारकों के अनुसार वैद्यक शास्त्र की प्रक्रियाओं के अनुसार बनायी गयी भस्में वस्तुतः 'Oxides होती हैं; और जारण की प्रक्रिया में O_2 को उनमें संयुक्त कर देना होता है। यही आधार 'जारक' शब्द को O_2 के लिए प्रयुक्त करने का कहा जा सकता है। परन्तु योरोपीयन विद्वानों की यह सम्मति वस्तुतः अयुक्त है। प्रो० डा० प्रफुल्लचन्द्रराय ने अपनी Hindoo chemistry नामक पुस्तक में यह स्पष्ट दर्शाया है कि वैद्यक शास्त्र द्वारा निर्मित भस्में वस्तुतः Oxides नहीं होतीं। उनमें और इनमें अनेक भिन्नताएँ हैं; और एक बहुत स्पष्ट भिन्नता जो सब लोग अत्यन्त सुभीते से समझ सकते हैं, यह है कि Chemistry के ढंग पर बने हुए Oxides पानी में डूब जाते हैं, अर्थात् भारी होते हैं; पर वैद्यक विधि से तैयार की गयी भस्में पानी पर तैरने का गुण रखती हैं।

Oxygen के लिए 'ओषजन' शब्द अधिक सुसंगत है; जो गुरुकुल कांगड़ी आदि अनेक संस्थाओं द्वारा लगभग ५० साल से व्यवहार में आता है। यह उष् दाहे धातु से भावेऽर्थ में घञ् करने से बनता है; जिससे इसका अर्थ है 'जलाने का काम'; जो इस काम को पैदा करे, उसे 'ओषजन' कहते हैं।

१२. Ketone के लिए शौक्त शब्द दिया है। शौक्त का अर्थ है, शुक्त (सिरका) से सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ। यह शब्द यदि Acetone के लिए चुना जाता, तो कदाचित् कुछ अर्थ रखता। Ketones के अन्तर्गत Acetone है; Acetone के अन्तर्गत Ketones नहीं है। Ketone के लिए 'क्नोन' शब्द अधिक समुचित है। इसका विग्रह है:—क्न, ऊन यस्मिन्, यस्माद्वा। Ketones, Aldehydes से समानता रखते हैं; भेद यह है कि aldehydes में 'CHO' group है, और ketones में 'Co'। पहलों के लिए 'निर्मद्योद' और पिछलों के लिए जैसा हमने अभी कहा है 'क्नोन', अपनी सार्थकता रखता है; क्योंकि उसकी रचना में Aldehydes की अपेक्षा, ऊनता कर दी गयी है।

१३. Lung fluke के लिए 'क्लोमपत्र' शब्द दिया है। Lungs के लिए 'फुफ्फुस' अथवा 'पुप्फुस' शब्द वैद्यक शास्त्र में प्रसिद्ध है। 'क्लोम' पिपासा स्थान का नाम है। (देखिए क्लोमं पिपासा स्थानं—वाग्भट्ट—शरीर स्थानम्)। Fluke एक प्रकार के कृमि है, जो यकृत्, फेफड़ों आदि में पाये जाते हैं; इन कृमियों की विशेषता यह है कि इनके शरीर पर्वहीन (Jointless or divisionless) होते हैं, इसलिए अपर्विन् (अपर्वी) नाम दिया जा सकता है। परिणामतः Lung fluke के लिए 'फुप्फुस-अपर्वी' होना चाहिए।

१४. Manometer के लिए 'वाष्पमापक' नाम मिथ्या है। Medical

Dictionary by Gould, 'manometer' का निम्नलिखित अर्थ देती है; An instrument for estimating the pressure exerted by liquids and gases। द्रवों (Liquids) और वाष्पों में महान् भेद है; इसलिए एतदर्थ वाष्पमापक शब्द का चुनना केवल अपने अबोध का दर्शक है। इसके लिए उपयुक्त शब्द 'अमूर्तमापक' है। अमूर्त का अर्थ है, जिसका कोई अपना आकार न हो। उसे जिस बरतन या स्थान में रखें, वैसा ही आकार उसका हो जावेगा। Liquids और Gases ऐसे ही पदार्थ हैं।

१५. Filter के लिए 'पाव' शब्द दिया है। पूञ् पवने धातु से भावे अर्थ में घञ् करने से पावः बनता है; जिसका अर्थ है 'शुद्ध करने का काम'। यह अर्थ Filter के अर्थ को नहीं दर्शाता। Medical Dictionary by Gould के अनुसार 'Filter is a strainer to separate the solid particles from a fluid'. इसके लिए उपयुक्त शब्द 'निस्यन्दक' है (देखिए E. S. Dictionary by Apte.)

१६-१७. Sucrose और saccharose के लिए क्रमशः 'खण्डघु' और 'शर्कराघु' शब्द चुने गये हैं। घुञ् अथवा घूञ् कम्पने धातु से क्विप् प्रत्यय करने से 'घु' शब्द बनता है। इस प्रकार उक्त दोनों का क्रमशः अर्थ हुआ 'खण्ड और शर्करा को कंपाने वाला'; जिस अर्थ में कोई सार्थकता नहीं दीखती।

वस्तुतः sucrose और saccharose एक ही पदार्थ के दो नाम हैं, जिसे हम 'गन्ने की शक्कर' नाम से पुकारते हैं। (देखिए Cohen's Organic chemistry और Medical Dictionary by Gould) इन दोनों के लिए 'इक्षुसिता' अथवा 'इक्षुशर्करा' शब्द अत्यन्त सुलभ और सार्थक है।

१८. Tincture के लिए 'निष्कर्ष' शब्द दिया है। निष्कर्ष का अर्थ है 'किसी पदार्थ में से खींच कर कुछ निकालना; और खिंचा हुआ पदार्थ निष्कर्ष होता है। इसको सार अथवा सत्व भी कह सकते हैं। Tincture का अर्थ Dillings के Materia Medica में यह दिया है— A Tincture is a solution of active substances in alcohol alone or combined with other solvents. पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि निष्कर्ष शब्द Tincture के अर्थ को कहाँ तक देता है। इसके लिए अधिक संगत शब्द 'मद्यागद' है। मद्यश्चासौ अगदश्चेति मद्यागदः; अर्थात् मद्य (मद्यसार) और अगद (औषध Drug) जहां परस्पर मिले हों, उसे 'मद्यागद' कहते हैं।

१९. Uriniferous tubules के लिए 'मूत्रनलिका' शब्द चुना गया है। Medical Dictionary by Gould में Uriniferous का अर्थ यह दिया है: 'Producing and Carrying urine'. क्या 'मूत्रनलिका' शब्द उक्त अर्थ को बतलाता है? मूत्रस्य नलिका, मूत्राय नलिका, मूत्रश्चासौनलिकाच, और मूत्रंच नलिका च आदि तत्पुरुष और द्वन्द्व समास Producing और Carrying का अर्थ नहीं दे सकते।

Uriniferous के लिए अधिक संगत शब्द 'मूत्रोदीरक' है। 'उद्+ईर्' के अर्थ

S.E. Dictionary by Apte में ये दिये हैं : (१) To arise, Originate (२) To start etc. मूत्रमुदीरयतीति मूत्रोदीरकः; उद् ईर् से ण्वुल् प्रत्यय करने से 'उदीरक' शब्द सिद्ध होता है।

२०. Vertebra के लिए 'कोकस' शब्द लिखा है। Vertebra का अर्थ Medical Dictionary by Gould में यह दिया है: A bony segment of the spinal column'. 'कीकस' का अर्थ S. E. Dictionary by आप्टे में यह दिया है: 'Hard, Firm'. 'सकीकस' का अर्थ 'Bone' दिया है । Vertebra और कीकस शब्दों के अर्थों की तुलना से, कोई भी दोनो को एक दूसरे का पर्यायवाची नहीं कह सकता।

प्रत्यक्ष शारीरम् (गणनाथ सेन) में Vertebra के लिए 'कशेरुका' शब्द चुना है, जो कि स्वरूप और अर्थानुसार, अत्यन्त सुसंगत शब्द है।

२१. Volt के लिए 'द्युशक्म' शब्द दिया है। 'द्युशक्म' शब्द 'द्यु' और 'शक्म' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'द्यु' शब्द विद्युत् का संक्षेप माना गया है, जिसमें से 'वि' और त्—अपनी इच्छानुसार मनमाने निकाल दिये हैं। 'शक्मन्' शब्द वैदिक है; और इसका अर्थ 'शक्ति, बल' है। 'द्यु' एक स्वतन्त्र शब्द भी है; और उसका अर्थ है : आकाश, चमक, तीक्ष्णता। इन सब अर्थों का विचार करने पर 'द्युशक्म' का अर्थ हुआ 'आकाश या चमक की शक्ति' अथवा विद्युत् की शक्ति।

Medical Dictionary by Gould ने volt का यह अर्थ दिया है Unit of Electromotive force or a force sufficient to cause a current of one ampere to flow against a resistance of one ohem'। 'Volt' और 'द्युशक्म' दोनों के अर्थों को हृदयगम करके सोच लीजिए कि वे कहां तक एक दूसरे के अर्थों को ढाँकते हैं। इनके लिए अधिक सार्थक शब्द 'स्थामैकाक' अथवा 'स्थामाक' है। Volt एक unit है जिसे संस्कृत साहित्य में 'एकाक' शब्द दिया जाता है। (S. E. Dictionary by Apte)। स्थामन् का अर्थ है stamina (Inherent force)। स्थामन् + एकांक समस्त होकर 'स्थामैकांक' बन जाते हैं। यदि अधिक संक्षेप करें तो इसके बदले 'स्थामांक' भी कह सकते हैं।

२२. Ampere के लिए 'द्युवहि' शब्द चुना गया है। Medical Dictionary by Gould ने Ampere का अर्थ यह दिया है : 'The unit of measurement of strength of an electric current.'। 'द्युवहि' शब्द में 'द्यु' तो पूर्ववत् विद्युत् का अपभ्रंश या भ्रंश है; और 'वहि' शब्द वह् धातु से इ (सूत्र ?) प्रत्यय करके बनाया गया है; इसका अर्थ प्राप्तकोशों में मुझे नहीं मिला है । लेखक ने 'द्युवहि' का अर्थ कदाचित् 'विद्युत् का बहना' किया है।

इसके लिए अधिक उचित शब्द 'धारैकांक' अथवा 'धारांक' है। धारा का अर्थ 'Current' और एकांक का अर्थ 'Unit' है। अधिक विशद करने के लिए 'विद्युत्' शब्द जोड़ा जा सकता।

है; अर्थात् 'विद्युद्वारैकांक' या 'विद्युद्वारांक'; पर शब्द के अधिक लंबा हो जाने से आक्षेपार्ह बन सकता है।

२३. Calorie के लिए 'उष' शब्द दिया है। Medical Dictionary by Gould, Calorie का यह अर्थ देती है : 'The amount of heat necessary to raise the temperature of one kilogram of water 1°c, also called a large colorie.'। उष् दाहे धातु से क प्रत्यय करने से 'उष' शब्द सिद्ध होता है' (देखिए इगुपधज्ञाप्रीकिरः क-अष्टा. ३.१.१३५.), जिस का अर्थ हुआ 'जलानेवाला'। 'उष' शब्द 'इकाई' की कोई ध्वनि नहीं देता।

इसके लिए अधिक उपयुक्त शब्द 'तापैकांक' अथवा 'तापांक' है, जिसका अर्थ है 'ताप की इकाई'।

उपसर्गों का अनुचित प्रयोग

६. अनेक स्थलों पर, उपसर्गों का प्रयोग निरर्थक दृष्टिगोचर होता है।

उदाहरण

१. Indigo निनील
२. Yeast प्रकिण्व
३. Carbon प्रांगार
४. Switch संवियत्
५. kaolin प्रमृत्

'निनील' शब्द 'नि+नील' से बना है। यहाँ 'नि' उपसर्ग का क्या विशेष अर्थ है, समझ में नहीं आता। केवल यह कहा जा सकता है कि निःशेषतया नील, निनीलम्। पर नील की किसी विशेषता का द्योतक यह नहीं बन सकता, क्योंकि अन्य पदार्थ भी पूर्ण रूपेण नीले हो सकते है। इसके अतिरिक्त 'निनील' शब्द का बनाना, एक और कारण से भी निरर्थक है; क्योंकि संस्कृत साहित्य में अत्यन्त प्राचीन काल से Indigo के लिए 'नीली' शब्द व्यवहृत होता चला आया है। (देखिए—अमरकोश।)

Yeast के लिए 'प्रकिण्व' शब्द चुना गया है; जिसका विग्रह है प्रकृष्टं किण्वं, प्रकिण्वम्। किण्व अनेक हैं, और प्रत्येक अपने-अपने गुण में प्रकृष्ट है; इसलिए Yeast को प्रकृष्ट कह देना, कोई औचित्य नहीं प्रकट करता। इसके अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही Yeast के लिए अनेक शब्द हैं, जैसे कारोत्तम, मद्यफेन, सुरामण्ड आदि। अतः नया शब्द बनाना कोई अर्थ नहीं रखता; क्योंकि वह किसी विशेष उपयोगी अर्थ का दर्शक नहीं है।

Carbon को 'प्रांगार' कहा है; जिस का विग्रह है : प्रकृष्टोंऽगारः प्रांगारः। अंगार, जले या बुझे कोयले को कहते हैं। तदनुसार 'प्रांगार' वह कोयला हुआ, जो अत्यधिक ताप पैदा करे, और प्रत्येक प्रकार से उत्कृष्ट हो। इस विषय में सम्मति-भेद हो सकता है, कि उक्त अर्थ को

ध्यान में रखते हुए 'प्रांगार' किस प्रकार के कोयले को कहा जावे; पर यहाँ लेखक ने Carbon के लिए इसे चुना है। Carbon तत्व है; और तत्व रूप में यत्र-तत्र पाया जाता है। साक्षात् जलाने के काम में उसे उपयोग मे नही ला सकते; तब वह 'प्रांगार' कैसा ?

इसके लिए सुलभ शब्द 'कौकिल' है। 'कोकिल' कहते हैं, कोयले को (देखिए रसरत्न समुच्चय और हिन्दी शब्द सागर-नागरी प्रचारिणी द्वारा संकलित)। कोकिल शब्द से तत्रभवः, सोऽस्यनिवासः, अभिजनश्च, तस्येदमादि अर्थों में अण् करने से 'कौकिल' शब्द बनता है। (देखिए, अष्टा. ४. ३. ५३, ४. ३. ८९; ४. ३. ९०, और ४. ३ १२०) अर्थात् कोयले में जो विद्यमान हो, अथवा बसे, अथवा जिसका वहाँ वांशिक घर हो, अथवा उससे सम्बन्ध रखता हो। इन सब अर्थों वाला पदार्थ 'कौकिल' कहलाता है, जो Carbon ही होता है।

Switch का अभिप्राय 'संवियुत्' से प्रकट किया है। 'युत' शब्द यु मिश्रणामिश्रयो. अथवा जुगुप्सायाम् धातु से क्विप् प्रत्यय करने से सिद्ध होता है; जिसका अर्थ है मिश्रण और अमिश्रण करने वाला या घृणा या निन्दा करने वाला। अब प्रश्न होता है, कि तब 'सम्' और 'वि' उपसर्गों के जोड़ने से क्या अर्थ सिद्ध होता है ? सम् का अर्थ है सम्यक्तया, 'वि' का अर्थ है विशेषेण अर्थात् अत्यधिकरूपेण अथवा वियोगरूपेण। तब 'संवियुत्' का विग्रह हुआ : सम्यक्तया, विशेषेण अथवा वियोगरूपेण यौति अथवा यावयते, इति संवियुत्। Switch का अभिप्राय तो 'युत्' कह देने मात्र से चल सकता है; तब उसके साथ सं, वि, आदि को जोड़ देने से अर्थसंकरता का ही भय बढ़ेगा, लाभ होने की आशा नहीं है।

Kaolin के लिए 'प्रमृत्' शब्द चुना गया है। 'प्रमृत्' का विग्रह है प्रकृष्टामृत्; अर्थात् प्रकृष्ट (शुद्ध, उत्तम) मिट्टी। Kaolin एक प्रकार की मिट्टी है, किसी मिट्टी को भी शुद्ध कर लेने से वह नहीं बन जाती है, तब वह प्रकृष्ट मिट्टी कैसे हुई ? वस्तुतः Kaolin के लिए 'प्रमृत्' नाम अटकलपच्चू ढंग से ही चुन लिया गया प्रतीत होता है। वैद्यक शास्त्र में प्राचीन काल से Kaolin के लिए 'गैरिक' शब्द का व्यवहार होता रहा है। (देखिए—Indian Materia Medica by K. M. Nadkarni)।

अन्य असावधानियाँ

७. जो पदार्थ सामान्य गुणों में परस्पर अधिक निकट हैं, उनके लिए शब्द चुनने में अत्यन्त असावधानी की गयी है।

उदाहरण

१. Charcoal अंगार; काष्ठांगार
२. Coal अंगार
३. Coke म्लांगार
४. Carbon प्रांगार
५. Anthra विक्ष

६. Protoplasm प्ररस
७. Plasma प्ररस; अस्राम्बु
८. Serum लसी
९. Lymph लसीका

Coal के लिए 'अंगार' शब्द, लेखक ने चुना है; किन्तु यह अनुभव करके कि प्राचीन काल से ही लकड़ी के कोयले के लिए अंगार' शब्द का व्यवहार होता रहा है, उसके आगे भी 'अंगार' शब्द लिख दिया; और उसके साथ 'काष्ठांगार' शब्द भी छोडा नहीं जा सका। विज्ञान की भाषा में इस प्रकार की ढोल क्षमाप्रदान के योग्य नहीं है। Coke के लिए 'न्यगार'शब्द रखा है। 'नि' उपसर्ग का अर्थ धातुओं और शब्दों के पूर्व रखने से 'नीचे की ओर गति' होता है। इसलिए 'न्यंगार' का अर्थ हुआ, नीचे की ओर रहने वाला अगार। ऐसा अर्थ होने पर न्यगार' शब्द Coal के लिए अधिक उपयुक्त ठहरता है, Coke के लिए नहीं; क्योंकि पृथ्वी में से Coal ही निकलता है; और Coke उसके द्वारा बनाया जाता है। Carbon के लिए 'प्रांगार' शब्द बना है; हम ऊपर कह आये हे कि Carbon के लिए प्रांगार शब्द उचित नहीं। (देखिए. उपसर्गों का अनुचित प्रयोग ६, उदाहरण ३.)। Anthra के लिए 'क्षिश' शब्द दिया है। 'क्ष'के अर्थ पृथ्वी, बिजली और नाश है। (S.E.Dictionary by Apte.)। इसलिए 'क्षिश' का अर्थ हुआ—विगतः क्षोयस्मात्, अथवा विशेषेणक्षः, अथवा निगतःक्षात्, इत्यादि। दूसरे शब्दों में जो नष्ट न होता हो, अथवा जो विशेषरूप से पृथ्वीमय पदार्थ हो, अथवा जो पदार्थ जमीन से निकलता हो, ऐसे पदार्थ को 'क्षिश'कहते है। क्या येसब अर्थ मिलकर Anthra (coal) के अर्थ को ढाँक लेते हैं ? संसार के सब पदार्थ नाशवान् है। विशेषरूप से पृथ्वीमय तो मिट्टी हा है; और जमीन से धातु, पत्थर आदि सभी कुछ निकलता है। तो क्या ये सब Anthra (Coal) है ? उपसर्ग सम्बन्धी अशुद्धि ६,उदाहरण ३, मे हमने बतलाया है कि Coal के लिए सर्वोत्तम शब्द 'कोकिल' है; और Carbon के लिए 'कौकिल'। तदनुसार ही लकड़ी के कोयले के लिए 'काष्ठकोकिल' और Coke के लिए 'कोकिलक' गढा जा सकता है, जिस मे 'कोकिल' शब्द से कन् अथवा क प्रत्यय किया गया है। ये प्रत्यय 'इवेप्रतिकृतौ', अल्पे, ह्रस्वे, कुत्सिते, अवक्षेपे आदि अर्थों में किये जाते है। (देखिए अष्टा. ५. ३. ९६ ,५. ३. ८५.,५. ३. ८६.,५. ३. ७४., ५. ३. ९५.)। दूसरे शब्दों में कोकिल से मिलता-जुलता पदार्थ, कोकिल से गुणों में हल्का अथवा अल्प पदार्थ, कोकिल से कुत्सित अथवा अवक्षिप्त पदार्थ 'कोकिलक' कहलाता है। इस प्रकार यह शब्द Coke के भाव को ढाँक लेता है। Anthra के लिए 'अंगार' शब्द चुना जा सकता है, जो Anthra के साथ ध्वनि में भी कुछ समीप ठहरता है।

Protoplasm के लिए 'प्ररस' शब्द दिया है; जिसका विग्रह है प्रकृष्टोरसः= प्ररसः; अर्थात् उत्तम रस। Medical Dictionary by Gould, Protoplasm का अधोलिखित अर्थ देती है: 'Protoplasm is the substance of the cell except the nucleus'। केवल उत्तम रस होने से इसे Protoplasm की जगह नहीं

बैठाया जा सकता। इसके लिए अधिक उत्तम शब्द 'मूलाधान' है। यह 'मूल + आधान' से बना है। इसका विग्रह है : मूलस्य (मूलपदार्थस्य) आधानं, मूलाधानम्। वह मूल पदार्थ कौन है? Nucleus. देखिए Medical Dictionary by Gould; जो कहती है कि The essential part of a typical cell and the controlling centre of its activity, is nucleus. Protoplasm (मूलाधान) Nucleus को धारण करने और पोषण पहुँचाने वाला पदार्थ है।

Plasma के लिए भी 'प्ररस' शब्द दिया है; और उसके साथ-साथ 'अस्राम्बु' शब्द भी रख दिया है। दो भिन्नार्थक शब्दों के लिए एक ही नाम देना गर्हित और हेय है। हां 'अस्राम्बु' शब्द कसौटी पर ठीक उतरता है। इसे अधिक सरल शब्दों में प्रकट करना हो, तो 'रक्तद्रव' कह सकते हैं।

Serum के लिए 'लसी' शब्द चुना है। 'लसी' शब्द की व्युत्पत्ति समझ में नहीं आती। कदाचित् 'लसीका' शब्द का 'का' अनुचित समझ कर निकाल दिया गया है; और बचा हुआ ग्राह्य भाग 'लसी' रख लिया है। Medical Dictionary by Gould के अनुसार Serum is the fluid constituent of the blood separated by coagulation Serum के लिए 'रक्तमस्तु' अथवा संक्षेप में 'मस्तु' या 'स्यन्द' शब्द अधिक सुसगत है। साधारणतया संस्कृत साहित्य में 'मस्तु' उस द्रव को कहते हैं, जो दूध से दही रूप में आने पर, अथवा कृत्रिमतया दूध के फटने पर, उसमें से पृथक् हो जाता है। Serum की उत्पत्ति भी रक्त से लगभग इसी प्रकार होती है। रक्त के आतञ्चित (Coagulated) होने पर उसमें से पृथक् हुआ द्रव भाग serum कहलाता है। इसलिए उसे 'रक्तमस्तु' अथवा सक्षेप में 'मस्तु' कहना संगत ठहरता है। दही रूप में, अर्थात् ठोस रूप में आये पदार्थ में से बहने के कारण उसे 'स्यन्द' भी कह सकते हैं।

Lymph के लिए प्राचीन काल से ही 'लसीका' शब्द का व्यवहार होता है; और सुसगत है।

८. भ्रममूलक नाम चुने गये हैं, जो अत्यन्त अनिष्टकर हो सकते हैं।

उदाहरण

१. Manganese लोहक

२. Nickel रूपक

३. Tellurium वगक

'लोह' शब्द संस्कृत साहित्य में जहां-तहां लोहे के लिए आया है। 'लोहक' शब्द लोह शब्द से 'कन्' अथवा 'क' प्रत्यय करने से बनता है, जिसका अर्थ होता है, लोहे जैसा अथवा कुत्सित लोहा। (देखिए अष्टा ५.३.९६., ५.३.७४.) । Iron और Manganese दो नितान्त भिन्न-भिन्न तत्व हैं; उनका सादृश्य किसी ढंग पर भी नहीं किया जा सकता। Iron के लिए 'लोह' अथवा 'अयस्' उचित शब्द है। Manganese के लिए 'मांगल' शब्द चुना जा

सकता है। कारण यह है कि manganese का सब से प्रसिद्ध लवण Potassium permanganate है, जिसे पानी में घोलने पर बड़ा सुन्दर गुलाबी अथवा लाल रंग बन जाता है। भारत में लाल रंग मंगल रूप माना जाता है। उदाहरणार्थ लालकमल, सिन्दूर, मेंहदी आदि का रंग लाल होता है; और मंगल तथा सुन्दर समझा जाता है। तदनुसार, मंगलस्येदं मांगलम्, मानते हुए इसे 'मागल' पुकारा जा सकता है।

Nickel के लिए 'रूपक' शब्द दिया है। रूपक का अर्थ है, रुपया (चांदी का बना हुआ)। रूप्य चांदी को कहते हैं। चांदी और Nickel परस्पर भिन्न-भिन्न तत्व है; और उनमें कोई समता नहीं है; इसलिए Nickel के लिए 'रूपक' शब्द संगत नहीं है। इस के लिए उचिततर शब्द 'व्यलीक' है, जिसका अर्थ है, मृषा, झूठा। 'Nickel' शब्द जर्मन शब्द Kupfer-Nickel से बना है; जिसका अर्थ है False copper। जब प्रथम-प्रथम यह प्रकृति में पाया गया था; तब इसे copper समझा गया था। इसी भाव को दर्शाने के लिए इसे Nickel शब्द दिया गया है। Nickel शब्द के मृषात्व को 'व्यलीक' शब्द उचितरूपेण दर्शाता है।

Tellurium को 'वंगक' कहा है, 'वग' प्राचीन काल से ही 'Tin' धातु के लिए प्रसिद्ध है। 'वगक' का अर्थ है, वग जैसा या कुत्सित वंग। (देखिए. अष्टा.५.३.९६.,५.३.७४) Tin और Tellurium में आकाश-पाताल का अन्तर है; इसलिए Tellurium के लिए 'वगक' शब्द का प्रयोग अत्यन्त अयुक्त है।

इसके लिए उचिततर शब्द 'मृल्लब्ध' है, जो Tellurium के धात्वर्थ से मिलान रखता है। Tellur का अर्थ है soil (Medical Dictionary by Gould)। Soil से निकलने वाला पदार्थ Tellurium (मृल्लब्ध) हुआ। यों तो अधिकतम तत्व मिट्टी से ही निकलते हैं; पर इसे विशेषकर 'मृल्लब्ध' कदाचित् इसलिए कहा गया है क्योंकि यह खनिज तत्वों के साथ मिला हुआ प्राप्त हुआ है।

९. प्रसिद्ध शब्दों के बदले अप्रसिद्ध शब्द चुने गये है।

उदाहरण

Sulphur शुल्वारि

Sulphur के लिए भारत में सुप्रसिद्ध नाम 'गन्धक' है; उसके बदले में 'शुल्वारि' नाम चुना गया है, जो शोभा नहीं देता। कहा जाता है कि 'शुल्वारि' शब्द का अपना इतिहास है और इसी शब्द से बिगड़ कर अंग्रेजी का 'Sulphur' शब्द बना है। सम्भव है ऐसा ही हुआ हो; तब भी प्रतिदिन प्रयोग में आनेवाले शब्दो की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

सुश्री र० माधवी "हिन्दी रत्न"

तेलगू साहित्य—एक परिचय

पूर्वकाल

तेलगू भाषा का प्रचार (क्रि० श०) ४०० या ५०० से प्रारंभ हुआ। विद्वानों का कहना है कि इस भाषा में ग्रंथ निर्माण ई० स० १०५० के लगभग प्रारंभ हुआ। उस समय आंध्र देश में पूर्व चालुक्य वंश राज्य करता था। वह वंश इतिहास में "बेंगी का चालुक्य वंश" नाम से ख्यात है। इस वंश के प्रतापी महाराज श्री राजराज नरेन्द्र भूपाल विष्णुवर्धन थे। इनका समय १०३० से १०६० तक था। इन्होंने तेलगू भाषा में साहित्य निर्माण के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया है।

तेलगू साहित्य के आदि कवि नन्नय भट्ट थे। इनका लिखा हुआ प्रथम ग्रंथ महाभारत का तेलगू अनुवाद है। ये राजराज नरेन्द्र भूपाल के दरबार में थे। इन्होंने महाभारत की रचना "वन-पर्व" तक की। इसके अतिरिक्त "शब्द चिन्तामणि" अथवा "प्रक्रिया कौमुदी" नामक व्याकरण ग्रंथ का निर्माण भी किया। इस व्याकरण ग्रंथ ने तेलगू भाषा को नियमबद्ध किया। नन्नय भट्ट के पश्चात् ११०० ई० में यर्र प्रगड प्रबंध परमेश्वर जी ने वन-पर्व को तेलगू भाषा में लिखा। इन्होंने 'हरिवंश' अथवा 'लक्ष्मीनरसिंहावतार' नामक एक सुन्दर ग्रंथ लिखा, जिसे लोगों ने बड़े गौरव के साथ स्वीकार किया। इस शताब्दी में व्याकरणकार तथा विमर्शकार बालसरस्वती, वासुदेवप्प तथा अहोबलपति आदि महान् कविपुंगवों ने तेलगू साहित्य का संवर्द्धन किया।

पूर्वमध्यकाल

काकतीय (सन् १२९७ ई०) राजाओं ने संस्कृत और तेलगू भाषा की बड़ी सेवा की। इनके समय में आन्ध्र देश में जैन-धर्म का विशेष प्रचार था, पर रामानुज प्रणीत वैष्णवमत और शंकरप्रणीत अद्वैत शैवमत का प्रचार भी इसी समय होने लगा, जिससे जैन-धर्म का महत्त्व कम हो गया। कर्नाटक देश में बसवेश्वर ने लिंगायत-मत की स्थापना की थी। उसका भी प्रभाव आन्ध्र देश पर पड़ा। इस प्रकार शैव, रामानुज और लिंगायत-मत के विद्वान् साहित्यिकों ने तेलगू भाषा में साहित्य का निर्माण किया। इन साहित्यिकों में मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य (सन् ईस्वी ११५०) का विशेष स्थान है।

मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य का निवासस्थान राजमहेन्द्रि के समीप था। शैवमत के प्रचार में इन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया। इन्होंने शिवतत्त्व-सारा, लिंगोद्भव देवचरित्र, रुद्रमहिम, गणसहस्रमाला, अमरेश्वराष्टकम् और पर्वतवर्णनम्—इन ग्रन्थों का तेलगू भाषा में

तथा गणसहस्र नाम, इष्ट लिंगस्तोत्र और बसवगीता—इन ग्रन्थों को कन्नड भाषा में लिखा है। पालकुर्की सोमनाथ ने (सन् ११८०-१२२० ई०) इनका जीवन चरित्र बहुत सुन्दर शैली में लिखा है।

पालकुर्की सोमनाथजी ने जनपद तथा बहुजन समाज में शैवमत का और मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य ने विद्वानों तथा उच्च वर्णों में शैवमत का प्रचार किया। सोमनाथ की भाषा-शैली सुगम तथा खड़ी तेलगू बोली में होने के कारण उनके ग्रन्थों का प्रचार अधिक हुआ है। इनके पहले जो विद्वान् लिखा करते थे उनका ग्रन्थ संस्कृत गर्भित तथा क्लिष्ट भाषा में होता था। यदि पालकुर्की सोमनाथ को जनपद तेलगू साहित्य का आदि कवि कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनके लिखे हुए ग्रन्थ निम्नलिखित हैं।

१ अनुभवसारा, २ सोमनाथभाष्या, ३ रुद्रभाष्या, ४ सद्गुरु रगड़ा, ५ चन्नमल्ल शिवमल्लु आदि।

काकतीय राजा प्रथम प्रतापरुद्र देव ११५८ से ११९७ तक राज्य करता था। यह स्वयम् ही बड़ा विद्वान् तथा साहित्यिक था। इसका ग्रन्थ "नीतिसारा" तेलगू साहित्य में सुप्रसिद्ध है। रुद्रदेव को विद्या-विभूषण भी कहा जाता है। प्रथम प्रतापरुद्र देव के बाद कुछ दिन काकतीय साम्राज्य में अराजकता रही। उसकी राजधानी ओरंगल में कुछ दिन तक राज्य-क्रान्ति होती रही। प्रतापरुद्र के भाई महादेव का इस राज्य-क्रान्ति में अंत हुआ। महादेव का एक पुत्र था। उसका नाम गणपतिदेव था। वह ओरंगल के काकतीय सिंहासन पर बैठा। गणपतिदेव का राज्यकाल ११९८ से १२६७ तक है। काकतीय साम्राज्य का उत्कर्ष चरम सीमा पर पहुँच गया। आन्ध्र देश इसके समय में काकतीयों के एकछत्र के अधीन था। गणपति देव के समय में उसका सामन्त मनुमसिद्धि महिम्नभूपाल विक्रमसिंहपुरी में राज्य करता था। इसी को आज कल "नेल्लूर" कहा जाता है। इसी राजा के दरबारमें कवि तिक्कण-सोमयाजी का उदय हुआ। तेलगू साहित्य में इसको सर्वश्रेष्ठ महाकवि समझा जाता है। इसने महाभारत की तेलगू भाषा में रचना की। विशेषत. भारतीय युद्ध के वर्णन में तिक्कण सोमयाजी की प्रतिभा ने असामान्य चमत्कार दिखलाया है। कहा जाता है कि युद्ध का वर्णन लिखाते समय तिक्कण जी परदे की आड़ में बैठकर अपने लेखको को वर्णन लिखाता था। उसके रोमांचकारी वर्णन से प्रभावित होकर लेखक अपने देह की सुख-शांति भूल जाते थे। तिक्कण सोमयाजी का स्थान तेलगू साहित्य में अचल है। इसका लिखा हुआ "महाभारत", नाचन सोमयाजी का लिखा हुआ 'हरिवंश', रंग-नाथ कवि का लिखा हुआ 'रामायण' और पोतन्न कवि का लिखा हुआ 'भागवत्' ये ग्रन्थ तेलगू साहित्य में प्रमुख और उच्चस्थान प्राप्त कर चुके हैं। आन्ध्र देश के घर-घर में ये ग्रन्थ बड़े चाव से पढ़े जाते हैं।

काकतीय सम्राट् गणपतिदेव के पश्चात् उसकी पुत्री रुद्रमांबा सन् १२६८ में सिंहासन पर बैठी। इसके समय में रामायण के दो ग्रन्थ लिखे गये। रुद्रमांबा के सामन्त गोने गन्नारेड्डी के आश्रय से रंगनाथ ने रामायण की रचना की। महाभारत व भागवत के साथ ही साथ १२९० ई० में रामायण पर तेलगू साहित्य में अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। इन ग्रन्थों की संख्या नौ हैं। इन

लेखकों में एक स्त्री 'मोलवीदीवी' है। रंगनाथ कवि के समकालीन कवि भास्करन ने भी रामायण काव्य रचा है किन्तु रंगनाथ की रामायण की बात कुछ और ही है।

रुद्रमांबा के पश्चात् काकतीय राजवंश का अंतिम सम्राट् द्वितीय प्रतापरुद्र देव सिंहासन पर बैठा। इसका समय १२९५ से १३२३ तक था। इसके समय में रुद्रभट्ट, 'प्रमाभिराम' नाटक के नाटककार त्रिपुरांतक, अलंकार शास्त्र के लेखक प्रतापरुद्र, 'मार्कण्डेय्य' पुराण के लेखक मारण-कवि आदि साहित्यिकों का गौरव रहा।

मध्यकाल

तेलगू साहित्य की काव्य-धारा राजाओं के आश्रय के साथ बहती रही है। तेलगू साहित्य का प्रारंभ काल वेंगी के चालुक्य वंश के साथ संलग्न रहा। चालुक्य वंश के बाद ओरंग के काकतीय राजवंश ने तेलगू कवि व ग्रन्थकारों को बड़ा ही आश्रय दिया। इस राजवंश के पहले चार राजा जैन मतानुयायी थे। परंतु प्रथम प्रतापरुद्र देव के समय से इन्होंने शैवमत स्वीकार किया। आन्ध्र देश में इसी समय धर्म-क्रांति हुई। जैन-धर्म की जगह रामानुज का वैष्णव मत तथा शंकरप्रणीत अद्वैत मत और बसवेश्वर के लिंगायत मत प्रचलित हुए। इस धार्मिक क्रांति के कारण बहुजन समाज में उनकी तेलगू भाषा में धार्मिक ग्रन्थ निर्माण की आवश्यकता हुई। यही कारण है कि मल्लिकार्जुन पण्डिताराध्य का शिवतत्त्व सार, पुल्कुर्की सोमनाथ का बसव-पुराण, निक्कल सोमयाजी का महाभारत, नाचन सोमन का हरिवंश और रंगनाथ का रामायण ये ग्रन्थ इसी काल में लिखे गये।

आंध्र देश के दुर्भाग्य से चौदहवी शताब्दी के प्रारंभ में अलाउद्दीन खिलजी और उसका पुत्र मुबारक खिलजी के समय में तुर्कों ने इस राज्य पर आक्रमण किया और १३२३ के लगभग मोहम्मद तुगलक ने प्रतापरुद्र को करबद्ध करके ओरंगल के इस साम्राज्य का अंत कर दिया। आन्ध्र देश में छोटे-छोटे सामन्तो ने राज्य स्थापित किये। इनमें ओरंगल का कन्हय्यदेव, देवरकुण्डा के सर्वज्ञ सिंहभपाल और कोण्डाविडु के रेड्डी राजाओं के वंश प्रख्यात है। देवरकुण्डा के राजा सर्वज्ञसिंह भूपाल के दरबार में तेलगू का सुप्रसिद्ध कवि श्रीनाथ का उदय हुआ। इन्होंने मारुत-चरित्र, नैषधम्, भीमेश्वर-पुराणम्, पल्लनाड़ी, वीरचरितम् आदि ग्रन्थ लिखे है। श्रीनाथ का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'नैषधम्' यह तेलगू साहित्य में पंच महाकाव्यों में से एक समझा जाता है। बारहवी शताब्दी के अंत में आन्ध्र देश के पल्लवनाड भाग में हैहय वंशीय राजपुत्रों में घोर अंतःकलह हुआ। फलतः वह राजवंश नष्ट हो गया। इस युद्ध ने आन्ध्र जनता में भारतीय युद्ध की स्मृति जागृत कर दी। इस युद्ध का वर्णन श्रीनाथ ने 'पल्लवनाडी युद्ध चरितम्' में बड़ी ही रोचक भाषा में किया है। तेलगू ऐतिहासिक काव्य का यह पहला और बड़ा ही उन्नत नमूना समझा जाता है। श्रीनाथ के समकालीन 'पोतण्ण' कवि हैं। इनका स्थान तेलगू साहित्य में—जैसे हिन्दी साहित्य में सूरदास जी का नाम प्रसिद्ध है वैसा ही बहुत प्रसिद्ध है। पोतण्ण एक महान ज्ञानी, परम भावुक भक्त एवम् जननायक कवि थे। उन्होंने अपनी रचना के लिए कृष्ण का चरित्र चुना। इन्होंने भागवत की रचना की। इनकी

लिखी हुई गजेन्द्रमोक्ष, प्रह्लाद चरित्र, श्रीकृष्ण लीला इत्यादि कविताएं आन्ध्र देश में अभी तक घर-घर गायी जाती हैं।

१५०९ से १५२९ तक कृष्ण देवराय विजयनगर के सम्राट् थे। इनकी राज्य-स्थापना महान् साधु विद्यारण्य ने तुंगभद्रा के तीर पर सन् १३३६ में की। कृष्णदेवराय के काल में संस्कृत, तेलगू और कन्नड़ साहित्य का बड़ा ही उत्कर्ष रहा। कृष्णदेवराय भी स्वयम् महापण्डित थे। दुर्भाग्य से १५६५ ई० में दक्षिण के पाँच बादशाहों ने मिलकर, तालिकोट के रणसंग्राम में विजयनगर के साम्राज्य को नष्ट कर दिया। यह राज्य मैसूर, तंजावूर, मधुरा और जीजी नाम के छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। बिजापूर और गोलकोण्डा का आक्रमण भी इसी समय दक्षिण भारत में बड़े प्रमाण में हुआ। आन्ध्र देश के कोने-कोने में मुसलमानों का राज्य १६३० तक फैल गया। आन्ध्र राजवंश की अवनति का परिणाम और आन्ध्र जाति की परदास्यता का प्रतिबिंब आन्ध्र साहित्य पर होना अनिवार्य था। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी का काल आन्ध्र साहित्य की अवनति का काल था। इसके बाद अंग्रेजी राज्य की स्थापना के अनंतर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से तेलगू साहित्य में फिर नव जीवन प्रारम्भ हुआ।

आधुनिक काल

सन् १७५५ में उत्तर आन्ध्र का प्रदेश अंग्रेजों की अधीनता में आगया। इसमें राजमहेन्द्री, विशाखपट्टणम्, विजयवाडा, मछलीपट्टणम्, गुण्टूर, तेनाली, नेल्लूर इत्यादि नगर हैं। सन १८०० में कडप्पा, कर्नूल, नल्लारी और अनन्तपुरम् का प्रदेश अंग्रेजी राज्य में समाविष्ट हो गये। अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार इस प्रदेश मे धीरे-धीरे होने लगा। मुद्रणालय भी स्थापित होने लगे। अंग्रेजी मिशन ईसाई धर्म का प्रसार करने लगे। 'ब्राऊन' नामक एक अंग्रेज महाशय ने तेलगू भाषा कोष की रचना की और तेलगू पण्डितों के सहयोग से उसने तेलगू व्याकरण और छन्दशास्त्र लिखे। मलादी वेंकटरत्नम् ने बाईबल का तेलगू मे भाषांतर किया। साथ ही साथ 'मद्रास स्कूल बुक एण्ड वर्णाकुलर लिटरेचर सोसैटी' नामक संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था की ओर से पण्डित सीतारामाचार्य ने 'शब्दरत्नाकर' नाम का कोष लिखा। मिशनरियों को देख कर आन्ध्र जाति के लोगों को हिन्दू-धार्मिक साहित्य के प्रचार की आवश्यकता प्रतीत हुई। सन १८५० में पुण्डला रामकृष्णय्या ने नेलूर नगर में 'चिन्तामणि' नाम का मासिक पत्र शुरू किया। इसमें निबंध, कविताएँ और दूसरे ग्रन्थों पर विमर्शक लेख आदि मुद्रित होने लगे। श्रीरामकृष्णय्या जी तेलगू साहित्य के प्रथम समीक्षक समझे जाते हैं। इसी काल में आन्ध्र देश में धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन शुरू हुआ। बंगाल में उस समय जो ब्राह्म समाज का आरंभ हुआ था उसका प्रभाव आन्ध्र जाति पर पड़े बिना नही रहा और अपने समाज की कुरीतियों को दूर करके समाज-सुधार करनेवाले अनेक सज्जन उस समय हुए। इन सब में मुकुटमणि और आधुनिक तेलगू साहित्य के जनक श्री ओरेशलिंगम् पंतलू थे।

आन्ध्र देश में समाज-सुधार का आन्दोलन इन्हीं के साथ प्रारंभ होता है। सन् १८७० से

१९०० तक का काल तेलगू साहित्य में वीरेशलिंग का काल समझा जाता है। इन्होंने कई अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद तेलगू में किया। आन्ध्र कवियों के चरित्र लिखकर उन्होंने आधुनिक सुशिक्षित समाज को तेलगू-काव्य से परिचय कराया। इन्होंने "जनाना" नाम का नियत पत्र निकालकर स्त्रियों के उद्धार व उन्नति के लिए बहुत काम किया। हरिजन उद्धार की तरफ मंगीपुडी शर्मा ने आन्ध्र जाति का ध्यान आकर्षित किया। विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रश्न भी साहित्य में ले आये। आन्ध्र जाति को आदिपुडी सोमनाथराव जी ने आर्यसमाज का परिचय करा दिया। स्वामी दयानन्द का चरित्र, सत्यार्थ-प्रकाश का तेलगू अनुवाद इनकी तेलगू साहित्य को देन है। इसके सिवाय इन्होंने गीतांजलि तथा कालिदास के तीन महाकाव्यों के तेलगू अनुवाद भी किये हैं।

तेलगू साहित्य में चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिहम् जी सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहे जाते हैं। रानी अहल्याबाई, सौन्दर्यतिलक, रामचन्द्र-विजय इत्यादि इनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन्होंने कई नाटक लिखे हैं। उनमें नरकासुर वध तेलगू नाटकों में विशेष स्थान रखता है। श्री लक्ष्मीनर-सिंहम् को आधुनिक तेलगू साहित्य के निर्माताओं में से एक कहा जा सकता है।

इसी समय समाज-सुधार की ओर नारियों का ध्यान भी आकृष्ट होने लगा। श्रीमती कोटिकलापूडी सीतम्मा, मोसलगंटी रामबायम्मा इत्यादि नारियों ने बहुत कुछ लिख कर समाज को जागृत किया। बडारु अच्चमांबा ने आदर्श-स्त्री कथा, अबला-सच्चरित्रमाला इत्यादि ग्रंथ लिखे।

तेलगू काव्य

सन् १८७३ के पश्चात् भी तेलगू काव्य पुराने ढंग से ही चल रहा था। देव-देवताओं की स्तुतियां, नीति-वैराग्य आदि शतकों के अनुकरण में शतक और कृतित्र ढंग के काव्य प्रबंध लिखे जाते थे। कोक्कुडा वेंकटरत्नम् के काव्य ग्रंथ पालकम, बिल्लेश्वरीयं नरकासुर विजय, व्यायोग तथा कोगटा, रामचन्द्र शास्त्री के काव्य ग्रंथ 'रथागदूत', मंजरी, मधुकरी में पुरानी शैली ही प्रतीत होती है। इसके बाद संधि-काल में दो कवियों का उदय हुआ—कवि तिरुपति और कवि वेंकटेश्वर। इन्होंने मिल-जुल कर कविताएं लिखी हैं। इनकी भाषा शैली सरल तथा वाहिनी है किन्तु भावना प्रधान कविताओं का तथा निसर्ग के नये दृष्टिकोण का अभाव होने से इनको संक्रमण युग का कवि समझा गया है।

तेलगू रंगमंच

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आन्ध्र देश में बिना मंच के खुले स्थान पर नाटक खेले जाते थे। इनको यक्षगान तथा भागवत कहते थे। इसमें सुधार करके सन् १९०५ के लगभग गुंटूर जिले के धन्वकुडा ग्राम के निवासी वेंकय्या ने उत्तर गोग्रहण, वामन चरित्र इत्यादि नाटक रचे और ये बहुत लोकप्रिय हुए। आधुनिक ढंग के नाटक रचने का श्रेय धर्मावर रामकृष्णाचारी और कोलाचलं श्रीनिवासराव को है। इन्होंने स्वयम् नाटक कम्पनियां चलायी और असंख्य नाटक लिख कर आन्ध्र देश में खूब प्रचार किया। रामकृष्णाचार्य को आन्ध्र देश में आन्ध्र-नाटक-पितामह कहा जाता है। सन् १९०० से १९३० तक निम्नलिखित नाटक उत्कृष्ट समझे जाते हैं—

(१) कृष्णमाचार्य कृत चित्रनकीयम्, (२) वीरेशलिंगम् पंतलू कृत शाकुन्तला, (३) वैलजेपल्ली लक्ष्मीकान्तम् कृत हरिश्चन्द्र, (४) तिरुपति वेंकटेश्वर कवि कृत पाण्डव-विजयम्, (५) चिलकमित लक्ष्मीनरसिंहम् कृत गयोपाख्यान, (६) वड्डादि सुब्बराव कृत वेणीसंहारम्, (७) श्रीपाद कृष्णमूर्ति कृत बोब्बिल्लि युद्धनाटकम्।

द्रोणमराजु सीतारामराव ने १९२१ के पूर्व ही लगभग ३२ नाटक लिखे और बहुत प्रसिद्ध हुए।

१९०० के पूर्व ही बहुत से मुद्रणालय स्थापित होकर साहित्य के प्रचार में हाथ बँटा रहे थे। इनमें सरस्वती निलयम् मुद्रणालय, आनन्द मुद्राक्षर शाला आदि प्रसिद्ध हैं। इसी समय बंगाली साहित्य का प्रभाव तेलगू पर पड़ा और कथा और उपन्यासों का निर्माण होने लगा। सन् १९०० के बाद चार पण्डित साहित्यिकों का उदय हुआ। (१) श्रीपाद कृष्णमूर्ति, इन्होंने महाभारत का तेलगू काव्य में रूपान्तर किया। (२) वेदम् वेंकटराय शास्त्री, इन्होंने कालिदास और हर्ष के नाटकों को तेलगू में अनुवाद किया। (३) जनमञ्ची शेषाद्रि शर्मा, इन्होंने ब्रह्माण्ड पुराण को तेलगू में अनुवाद किया। इन्हें आन्ध्र विश्वविद्यालय ने 'कलाप्रपूर्ण' नामक उपाधि देकर सम्मान किया। (४) कोप्पू सुब्बराव, इन्होंने तेलगू में वाल्मीकि रामायण की रचना की और इनको आन्ध्र जाति ने आन्ध्र वाल्मीकि के नाम से सराहा।

सन् १९११ में आन्ध्र सारस्वत सभ की स्थापना हुई। इस संस्था के द्वारा वूराशेषगिरि राव तथा चेटिलक्ष्मी नरसिंह राव ने तेलगू साहित्य की बड़ी सेवा की। इन्हीं दिनों में आन्ध्र साहित्य-परिषद् की स्थापना हुई। यह परिषद् संस्कृत प्रचुर भाषा को महत्त्व देती थी। इसी कारण जानपद भाषा के अभिमानी गिडगु राममूर्ति ने नव्य साहित्य परिषद् की स्थापना की। आन्ध्र साहित्य की यह परिषद् महत्त्वपूर्ण सेवा कर रही है। सन् १९०० के बाद राष्ट्रीय और राजकीय वाङ्मय की ओर आन्ध्र जाति का ध्यान आकर्षित हुआ। भानुमूर्ति का "भारतवर्ष दर्शन", भास्कर राव नायडू के प्रफुल्लमुखी और देवी चौधराणी, राममूर्ति कृत मिलमहाशय के लिबर्टी ग्रन्थ का अनुवाद, वीरभद्राचार्य का भारत-धर्म-दर्शन, दोरस्वामी का आनन्दमठ, नारायन राव का विशाल आन्ध्र आदि पुस्तकें उसी कालखण्ड में प्रसिद्ध हुई और स्वतंत्र आन्ध्र प्रांत का आन्दोलन भी इसी समय शुरू हुआ। डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या के आन्ध्र जातीय कलाशाला के द्वारा, त्रिवेणी त्रैमासिक के संपादक रामकोटीश्वर राव, विश्वकवि विश्वनाथ सत्यनारायण, चित्रकार अड्वी नापिराजू का उदय भी इसी समय हुआ। आधुनिक काव्य का प्रारंभ तेलगू साहित्य में रायप्रोल सुब्बराव से होता है। सन् १९०९ में इनका खण्डकाव्य "ललिता" प्रकाशित हुआ। इसके बाद क्रमश: "तृण-कंकण", "मधुकलश", "स्वप्नकुमारम्" इत्यादि काव्य उन्होंने लिखे।

बसवराज आपाराव आन्ध्र भाषा के कीट्स कहे जाते हैं। युवावस्था में ही इनका देहान्त हो गया। इनके काव्य ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने १९२० ई० में "साहिती" नाम का एक पत्र निकाला। इसी साहित्य समिति से आगे चलकर नव्य-साहित्य परिषद् की स्थापना हुई। इस परिषद् के द्वारा लघु-कथा, समीक्षा आदि के लेखकों का जन्म हुआ। इसी समय श्री नागे-

श्वर राव ने दैनिक-आन्ध्र-पत्रिका, साप्ताहिक पत्रिका तथा मासिक भारती का संपादन शुरू किया। आन्ध्र-विश्वविद्यालय की स्थापना १९२५ ई० में हुई। इससे तेलगू साहित्य को बड़ा ही प्रोत्साहन मिला। इसके उपकुल गुरु श्रीमान सि० आर० रेड्डि थे; वे आन्ध्र साहित्य में बड़े उच्चश्रेणी के समीक्षक समझे जाते हैं। इस काल-खण्ड में क्रैस्त कवि जासुवा ने १९३० ई० में "फिरदौसी" महाकाव्य की रचना की। काटूरू वेंकटेश्वरराव का महाकाव्य 'सौन्दरनन्द', बुद्धकालीन जीवनी का चित्रण करता है।

आजकल के तेलगू साहित्य में सबसे उच्च स्थान विश्वनाथ सत्यनारायण जी का है। इन्होंने तेलगू गोष्ठी, गल्प, लघुकथा, प्रबंध, नाटक तथा उपन्यास के रूप मे विपुल रचनाएँ की हैं। तेलगू साहित्य में इन्होने कई उच्चकोटि के उपन्यास लिखे हैं। इनके उपन्यासों मे आन्ध्र जाति के आधुनिक-जीवन का संपूर्ण चित्रण दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार तेलगू साहित्य मे आजकल नये-नये ग्रन्थ निर्माण हो रहे हैं। नये नियति-कालिक निकल रहे है। साम्यवाद तथा समाजवाद का प्रतिबिंब तेलगू साहित्य पर धीरे-धीरे पड़ रहा है और आशा की जा रही है कि तेलगू साहित्य की वृद्धि उत्तरोत्तर भिन्न-भिन्न धाराओ मे होगी।

श्री साँवलिया बिहारीलाल वर्मा, एम०ए०, एल-एल० बी०

हिन्दी में पुराण

पुराणों की उत्पत्ति

"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषासह" अथर्ववेद के इस कथन से यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए हैं। शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक, छान्दोग्योपनिषद् आदि में भी पुराण का नाम पाया जाता है किन्तु जिन पुराणों का उल्लेख वैदिक साहित्य में है वह पुराण आजकल उपलब्ध नहीं हैं। महाभारत के आदि पर्व में वर्णित शौनक के कथन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाभारत से पहले जो कुछ प्राचीन पुराण प्रचलित था उसमें सृष्टि-विज्ञान, सृष्टि का विस्तार, लय और फिर से सृष्टि आदि के वर्णन के अतिरिक्त दिव्य कथा और वंश के वर्णन विस्तार से दिये हुए थे। आज उनके मूल संस्करण अप्राप्य हैं। कहा जाता है कि वेदव्यास ने वेदों का सम्पादन कर जब चार विभाग किया तो पांचवें वेद अर्थात् पुराणों का भी संग्रह कर दिया।

पुराणों की संख्या और क्रम

पुराण अनेक हैं किन्तु पुराणविद् इनकी संख्या १८ ही निर्दिष्ट करते हैं। अन्य पुराणों की गणना उप-पुराण में करते हैं। पुराणों में १८ संख्या का होना कुछ अभिप्राय रखता है। १८ की परम्परा उस समय चली जब व्यास का "जय" ग्रन्थ लाख श्लोकों में लिखा गया और सूतों ने महाभारत ग्रन्थ को १८ खण्डों में विभक्त किया। महाभारत के योद्धाओं की संख्या भी १८ अक्षौहिणी थी। महाभारतयुद्ध भी १८ दिन तक चला। महाभारत के अन्तर्गत गीता भी १८ अध्याय में है। मूल धर्मशास्त्र भी १८ माने गये हैं।

भिन्न-भिन्न पुराणों में, पुराणों के पाच लक्षण दिये गये हैं।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणिच।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।।

अर्थात् सृष्टि का आरम्भ, विस्तार, लय तथा पुनः सृष्टि आदि के साथ-साथ किस-किस मनु का समय कब-कब रहा और उस काल मे कौन-सी महत्त्वपूर्ण घटना हुई और राजाओं के वंश का वर्णन पुराणों का विषय कहा गया है।

पुराणों में सब से प्राचीन ब्रह्म पुराण माना जाता है। विष्णु, मत्स्य और ब्रह्माण्डादि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन सब पुराणों में एक ही है। यहाँ तक कि एक-

एक श्लोक मिल जाता है। किसी में कुछ श्लोक अधिक और किसी में कम, यह अन्तर है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सब का मूल एक ही है। सभव है कि व्यास-रचित पुराण के १८ भाग रहे हों जिनके आधार पर व्यास जी की शिष्य-परम्परा ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार समय-समय पर १८ पुराणों की रचना कर डाली और भिन्न-भिन्न सग्रहकारों ने प्रसंगवश अपने अपने इष्टदेव की प्रतिष्ठा और मर्यादा को ध्यान में रखते हुए प्रसंग की पूर्ति और संग्रह को रोचक बनाने के लिए अपने रचे श्लोक बढ़ा दिये हों। पुराणो के अनुशीलन से पता चलता है कि हर एक के उद्देश्य विशेष होने के कारण भिन्न-भिन्न पुराणो पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव है। ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के अनुयायी पण्डितों ने व्यासजी की शिष्य-परम्परा से निर्माण करा कर अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुकूल कुछ परिवर्त्तन और परिवर्धन किये हों।

इतिहासज्ञों का मत है कि बौद्ध-धर्म के प्रभाव से वैदिक धर्म को बहुत धक्का लगा। अत: लोग धर्म की रक्षा के लिए सावधान हो गये। जिसके परिणाम स्वरूप भक्ति-प्रधान पुराणों की रचना हुई। आवश्यकतानुसार पुराणो में सशोधन और परिवर्त्तन का क्रम शंकराचार्य के बाद तक जारी रहा। यही कारण है कि पद्म पुराण में केवल बुद्धावतार और जैन धर्म का ही उल्लेख नही है किन्तु शकराचार्य के विषय की बहुत-सी बातें दी गयी हैं। पुराणो के द्वारा देश मे शुष्क कर्मकाण्ड के स्थान पर भक्तिरस का विलक्षण प्रभाव फैल गया और उसके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न देवों की उपासना बढ़ी, मूर्ति एव मन्दिर निर्माण की ओर लोगो की प्रवृत्ति बढ़ी।

पुराणों में अवतारवाद

अवतारवाद पुराणो का एक प्रधान अग है। सभी पुराणो मे अवतार का प्रसग आया है। शैवप्रधान पुराणो मे शकर के नाना अवतारो की चर्चा है और उसी प्रकार वैष्णव पुराणों में विष्णु के अनेक अवतारों की। वेद मे जो अनेक बातें सूत्र रूप मे किसी विशेष उद्देश्य से दी गयी हैं उनका विस्तार रोचक कथाओं के रूप मे पुराण में किया गया है। वेद में विष्णु सूर्य का पर्यायवाची शब्द है। वेद में विष्णु के तीन पद मे सम्पूर्ण सृष्टि को अच्छादित करने की चर्चा है। इसको लेकर पुराणों मे वामनावतार की कथा का विकास हुआ है। ब्राह्मण ग्रंथों की भी अनेक कथाओं ने पुराणों में विशाल रूप ग्रहण कर लिया है। शतपथ ब्राह्मण मे रुद्रदेव की उत्पत्ति का वर्णन है। इसी को लेकर मार्कण्डेय और विष्णु पुराण में शकर की उत्पत्ति का वर्णन आया है। इस प्रकार वैदिककाल से पौराणिक काल तक हिन्दू-धर्म क्रमश: परिवर्तित तथा विकसित होता गया। वेद उपाख्यानमूलक ग्रन्थ नहीं है। ऐसी कुछ विद्वानों और स्वामी दयानन्द की मान्यता है। किन्तु अन्य विद्वानों का कहना है कि वेद में स्थल विशेष पर उदाहरण स्वरूप उपाख्यान भी जगह-जगह दिये गये है। पुराणों में उन सब उपाख्यानो को एकत्र करने की चेष्टा की गयी है। इसी कारण वेद का क्षुद्र प्रसंग पुराणों मे विपुलकाय धारण करके देखने मे स्वतंत्र ज्ञात होता है।

पुराणों का सामाजिक महत्त्व भी कम नहीं है। उस समय के भारतीय समाज का स्वरूप पुराणों में ही उपलब्ध होता है।

पुराणों का प्रधान उद्देश्य पंचदेव---विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश तथा शक्ति की उपासना का प्रचार ज्ञात होता है। परमात्मा के ये पांच भिन्न-भिन्न सगुण रूप माने गये हैं।

विषय विवेचन

अठारह पुराण ---(१) ब्रह्म, (२) पद्म, (३) विष्णु, (४) वायु, (५) श्रीमद्भागवत, (६) नारद, (७) मार्कण्डेय, (८) अग्नि, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त, (११) लिंग, (१२) वराह, (१३) स्कन्द, (१४) वामन, (१५) कूर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड़ तथा (१८) ब्रह्माण्ड हैं। इन अठारह पुराणों की श्लोक सख्या ३९५१०० हैं। इनके अतिरिक्त उपपुराण हैं जिनकी संख्या २९ कही जाती है। महाभारत का खिल (अतिरिक्त पर्व) हरिवंश की भी गणना उपपुराणों में की जाती है।

देवी भागवत और शिवपुराण को लेकर विद्वानों में महान् मतभेद है। कोई देवी भागवत को पुराण मानता है, तो कोई श्रीमद्भागवत को, इसी प्रकार कोई वायु पुराण को पुराण मानता है और कोई शिवपुराण को। पद्मपुराण में श्रीमद्भागवत को सब पुराणों में श्रेष्ठ बतलाया है। श्रीमदभागवत की प्रतिष्ठा आम जनता मे बहुत है इसका दशम स्कन्ध (कृष्ण चरित्र) सुखसागर के नाम से विशेष प्रसिद्ध और मान्य है। स्वामी वल्लभाचार्य का तो वह प्रस्थानत्रयी के साथ-साथ मान्य ग्रंथ है। देवी भागवत की प्रतिष्ठा, शाक्तों में श्रीमदभागवत की तरह है। यह प्रत्यक्ष है कि अनेक पुराणों मे देवी भागवत अधिक उपादेय तथा मान्य है।

डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री का विचार है कि सिवाय विष्णु और वामनपुराण के, समस्त पुराणो का कई बार नूतन संस्करण हो चुका है जिसके परिणाम स्वरूप उनका कलेवर बदल गया है। कुछ भी हो, पुराणों की यह विशेषता है कि इनमें विवरण साफ, सीधा और स्पष्ट भाषा में दिया गया है।

डाक्टर शास्त्री पुराणों को छः समूह मे निम्न प्रकार बाँटते हैं:---

१. साहित्य के विश्वकोशः---इस समूह मे गरुड़, अग्नि, और नारद पुराण आता है।

गरुड़ पुराण के पूर्व खण्डों मे नाना विद्याओं का विस्तृत वर्णन है। नाना प्रकार के रत्नों की परीक्षा की विधि बतायी गयी है। राजनीति का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है, आयुर्वेद के निदान तथा चिकित्सा का विशद वर्णन है। छन्दशास्त्र का अनुशीलन भी है। इस पुराण का उत्तरखण्ड "प्रेतकल्प" कहलाता है। मरने के बाद मनुष्य की क्या गति होती है उसका वर्णन विस्तार पूर्वक दिया गया है। श्राद्ध के समय इस पुराण का पाठ किया जाता है। किन्तु इस पुराण का हिन्दी अनुवाद हमें कहीं देखने को नहीं मिला। केवल उत्तरखण्ड का पण्डिताऊ अनुवाद खुले पत्रों में (काशी से प्रकाशित) मुझे पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है।

अग्नि पुराण समस्त भारतीय विद्याओं का विश्वकोश है। इस पुराण में रामायण, महाभारत आदि कथाओं के अतिरिक्त मन्दिर-निर्माण का विवेचन सुचारु रूप से किया गया है।

ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। अलंकार-शास्त्र का विवेचन बड़े ही मार्मिक ढंग का है। व्याकरण की छानबीन अनेक अध्यायों में है। योगशास्त्र के अष्टांग का भी सुन्दर वर्णन है। गीता का सारांश दिया गया है। अन्त में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का सार संकलित है, अतएव इस पुराण के ही अनुशीलन से समस्त ज्ञान-विज्ञान का परिचय मिलता है। इसी कारण इस पुराण (३८३-५२) में ही कहा है:—आग्नेय हि पुरणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः। यह अत्यन्त दुःख की बात है कि अब तक इस पुराण का राष्ट्र भाषा हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ है।

नारद पुराण में आश्रम के आचार, श्राद्ध प्रायश्चित आदि का वर्णन है। व्याकरण, निरुक्त और ज्योतिष का भी विवेचन है। विष्णु, राम, हनुमान, कृष्ण, काली तथा महेश के मंत्रों का विधिवत् निरूपण है। अठारहों पुराणों की विस्तृत विषय सूची दी गयी है। अतएव इस पुराण से समस्त पुराणों की विषय-सूची का ज्ञान हो जाता है।

२. स्कन्द, पद्म और भविष्य पुराण में तीर्थ और व्रत का विशेष स्थान है। तीनों पुराण इतनी बार संशोधित और परिवर्धित हुए हैं कि उनका काया-पलट हो गया है। उदाहरणार्थ स्कन्द पुराण में स्कन्द (स्वामी कार्तिकेय) के सम्बन्ध की बात नहीं के बराबर है तथापि यह स्कन्द पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। यह सब पुराणों में विशालकाय है और श्लोकसंख्या ८१००० है। सौभाग्यवश गीता प्रेस ने कल्याण के वर्तमान वर्ष के विशेषांक के रूप में इसका संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित कर हिन्दी भाषा भाषियों के लिए इसे उपलब्ध कर दिया है। इस पुराण में वैदिक तथा तांत्रिक उभय प्रकार की पूजाओ का विस्तार के साथ वर्णन आया है। अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का शैवमत के साथ सम्पुटित कर बड़ा ही सुन्दर आध्यात्मिक विवेचन किया गया है। अतएव दार्शनिक दृष्टि से इस पुराण का वैभव-खण्ड बड़ा ही उपादेय है। आत्मस्वरूप का कथन तथा उसके साक्षात्कार के उपाय बड़ी सुन्दरता के साथ प्रतिपादित किये गये है। मुख्यतः तीर्थों का उपाख्यान और पूजन विधि इस पुराण में दी गयी है। प्रसिद्ध सत्यनारायण व्रत कथा इसी के रेवा खण्ड का अंश है। इसका तापी खण्ड भारत की तत्कालीन सामाजिक अवस्था को प्रदर्शित करता है। दक्षिण-भारत में इस पुराण की विशेष प्रतिष्ठा है। नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित संपूर्ण पुराण का हिन्दी अनुवाद प्राप्य नही है।

पद्म पुराण की प्रतिष्ठा वैष्णवों में बहुत है। वैष्णवों की तिलक विधि और उनके विविध नियमो का निरूपण आदि दिया गया है। यह पुराण विष्णु भक्ति का प्रधान ग्रंथ होने पर भी अन्य देवताओ के प्रति अनुदार भाव का दर्शन नही करता। शिव-लिंगार्चन के नियम के साथ-साथ विष्णु और शिव की एकता के प्रतिपादक महत्त्वपूर्ण श्लोक भूमिखण्ड के ७१ वे अध्याय में दिये गये है।

शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम।
द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः॥

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ।
शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोश्च हृदये शिवः ॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवाः ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ।
त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदा प्रकीर्तिताः ॥

इस पुराण में अनेक व्रत और तीर्थ-महिमा दी गयी है । गीता प्रेस गोरखपुर ने कल्याण के अंकों के रूप में संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किया है ।

भविष्य पुराण में शाकद्वीपी ब्राह्मणों के भारत में आने की कथा है । सूर्य का परब्रह्म रूप में वर्णन है । अनेक प्रकार के पुष्प चढ़ाने का पृथक्-पृथक् फल, उपवास-विधि, व्रत के दिन, त्याज्य पदार्थ-रहस्य, गायत्री का माहात्म्य, संध्या-वन्दन का समय दिया गया है । सर्प का विष हरने वाली संजीवनी गोली आदि का वर्णन है । पाण्डवों से लेकर गुप्त राजाओं तक का उल्लेख है । इस पुराण में सबसे अधिक गड़बड़ी है । क्योंकि विद्वानों ने समय-समय पर होने वाली घटनाओं को जोड़ा है । यहाँ तक कि इसमें अंग्रेजों के आने का भी वर्णन मिलता है । पं० दुर्गाप्रसाद ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया था जो आज प्राप्य नहीं है ।

३ डाक्टर शास्त्री की राय में (१) ब्रह्म (२) श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराणों में दो बार संशोधन और परिवर्धन स्पष्ट दीख पड़ता है ।

ब्रह्म पुराण में उड़ीसा में स्थित कोणादित्य (कोणार्क) नामक तीर्थ तथा तत्सम्बन्धी सूर्यपूजा का वर्णन है । इसमें सांख्य योग की समीक्षा बड़े विस्तार के साथ की गयी है । किन्तु यह पौराणिक सांख्य निरीश्वरवादी नहीं है और उसमें ज्ञान के साथ भक्ति का भी विशेष पुट मिला हुआ है । गीता प्रेस ने कल्याण के विशेषांक के रूप में इस पुराण का मार्कण्डेय पुराण के साथ संयुक्त अंक प्रकाशित किया है ।

श्रीमद्भागवत् संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है । यह ग्रंथ अद्वैततत्त्व का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में करता है । इसके दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण चरित्र है । पुराणों में जितना इस पुराण का संस्करण मूल अथवा हिन्दी अनुवाद के साथ अथवा हिन्दी अनुवाद मात्र छपा है वैसा और किसी पुराण का नहीं । गीता प्रेस ने तो सम्पूर्ण पुराण को सानुवाद कल्याण के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया है । इंडियन प्रेस प्रयाग ने भी सुन्दर सचित्र हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर लोक-कल्याण किया है । पंडित रामस्वरूप शर्मा और महाराज रघुराज सिंह ने भी हिन्दी अनुवाद किया है । ये दोनों ग्रंथ बम्बई से प्रकाशित हुए । नवलकिशोर प्रेस लखनऊ ने पं० गया प्रसाद मिश्र से अनुवाद कराकर प्रकाशित किया । इस समय केवल इंडियन प्रेस का अनुवाद प्राप्य है । सन्त प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी इन दिनों श्रीमद्भागवत् की कथाओं को भागवत-कथा के नाम से अपने विस्तृत सुन्दर भाष्य के साथ झूसी (प्रयाग) से हिन्दी में, खण्डों में प्रकाशित कर रहे हैं, जो पठनीय है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रधान लक्ष्य श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन करना है । प्रकृति भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार समय-समय पर दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा के रूप

में प्रकट हुई हैं। इस पुराण में गणेशजी का श्रीकृष्ण के अवतार के रूप में वर्णन है । इस पुराण का हिन्दी अनुवाद मुझे कहीं नहीं मिला ।

४. ऐतिहासिक पुराणों के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड, वायु और विष्णु पुराण आते हैं ।

ब्रह्माण्ड पुराण में पूरे विश्व का सांगोपांग वर्णन किया गया है । भिन्न-भिन्न द्वीपों का बड़ा ही रोचक वर्णन है। इतिहास की दृष्टि से यह अत्यन्त उपादेय है। इसमें वर्णित रामचरित्र आध्यात्म रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। गीता प्रेस ने भी इसका सानुवाद संस्करण प्रकाशित किया है । किन्तु सम्पूर्ण पुराण का अनुवाद मुझे कहीं प्राप्त नहीं हुआ। इसके अन्तर्गत ललितोपाख्यान में त्रिपुरी सुन्दरी जगदम्बा के अवतार तथा लीलाओं का वर्णन है ।

वायु पुराण का अधिकांश भाग प्राप्त नहीं है । यह पुराण भौगोलिक वर्णन के लिए विशेष रूप से पठनीय है । इस पुराण की विशेषता शिव के चरित्र का विस्तृत वर्णन है । परन्तु यह साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से दूषित नहीं है । विष्णु का महत्त्व और अवतारों का वर्णन भी आया है। पशुपति की पूजा से संबद्ध पाशुपत योग का निरूपण इस पुराण की महती विशेषता है । पाशुपत योग का वर्णन अन्य पुराणों में नहीं मिलता किन्तु इसमें विस्तारपूर्वक दिया गया है । प्राचीन योगशास्त्र के स्वरूप को जानने के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इसका सुन्दर अनुवाद प्रकाशित किया है जो प्राप्य है ।

विष्णु पुराण में भूगोल का बड़ा ही सांगोपांग विवेचन है । यह पुराण वैष्णव धर्म का एक मूल अवलम्ब है। ज्ञान के साथ भक्ति का सामञ्जस्य इस पुराण में बड़ी सुन्दरता से दिखलाया गया है । विष्णु की प्रधान रूप से उपासना होने पर भी इस पुराण में सकीर्णता का लेशमात्र नहीं है। भगवान् कृष्ण ने स्वयम् शिव के साथ अपनी अभिन्नता निम्न प्रकार प्रकट की है :—

> योऽहं सत्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
> मत्तो नान्यदशेषं यत्, तत्त्वं ज्ञातुमिहर्हसि ।
> अविद्या मोहितात्मानः पुरुषाभिन्न दर्शिनः ।
> वदन्ति भेदं पश्यन्ति, चावयोरन्तरं हर । (५-३३-४८९)

साहित्य की दृष्टि से भी विष्णु पुराण बड़ा ही रमणीय सरस तथा सुन्दर है । इस पुराण का हिन्दी अनुवाद गीता प्रेस से स्वतन्त्र पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ था किन्तु आज अप्राप्य है ।

५. साम्प्रदायिक पुराण लिंग, वामन और मार्कण्डेय है ।

लिंग पुराण में शिवलिंग की पूजा का विवेचन है । शैव पुराण होने के कारण शैव व्रतों तथा तीर्थों का वर्णन है । पशु, पाश तथा पशुपति की व्याख्या शैव तंत्र के अनुकूल की गयी है। इस पुराण का हिन्दी अनुवाद प० दुर्गाप्रसाद ने किया जो नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित हुआ था, किन्तु आज प्राप्य नहीं है ।

वामन पुराण में विष्णु के भिन्न-भिन्न अवतारों का वर्णन है । किन्तु वामनावतार का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। पं० श्यामसुन्दर लाल त्रिपाठी का अनुवाद बम्बई से छपा था।

मार्कण्डेय पुराण में मरणोत्तर जीवन की कथा है। इसमें ज्ञानयोग के साथ कर्मयोग का अपूर्व सामंजस्य दिखाया गया है। प्रसिद्ध दुर्गा सप्तशती इस पुराण का विशिष्ट अंग है। केवल ९००० श्लोक का यह पुराण महापुराणों में सबसे छोटा है। मार्कण्डेय पुराण का हिन्दी अनुवाद प्रयाग से छपा है। इसके अतिरिक्त प० कन्हैयालाल मिश्र का अनुवाद बम्बई से, पंडित रामस्वरूप जी का मुरादाबाद से तथा पं० रघुराज दूबे का लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। किन्तु आज इन चारों में कोई प्राप्य नहीं है। गीता प्रेस ने ब्रह्म पुराण के साथ इसका अनुवाद कल्याण के विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया था जो भी प्राप्य नहीं है।

६ कूर्म, वराह और मत्स्य पुराणों में अनेक संशोधन हुए, जिसके कारण इनका कलेवर ही बदल गया।

कूर्म पुराण में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को एक ही ब्रह्म की तीन पृथक् मूर्तियाँ कहा है। शक्ति-पूजा पर विशेष जोर दिया गया है। इस पुराण का हिन्दी अनुवाद हमें कहीं नहीं मिला।

वराह पुराण में विष्णु सम्बन्धी अनेक व्रतों का विवरण है। कठोपनिषद् के नाचिकेतो-पाख्यान की कथा विस्तारपूर्वक दी गयी है। स्वर्ग और नरक का विशेष वर्णन है। इस पुराण का अनुवाद प० दुर्गाप्रसाद जी ने किया था जो लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। किन्तु आज प्राप्य नहीं है।

मत्स्य पुराण की महत्ती विशेषता व्रतों का वर्णन है। राजधर्म का विशिष्ट वर्णन है। प्रतिमा का लक्षण अर्थात् भिन्न-भिन्न देवताओं की प्रतिमा का मानपूर्वक निर्माण का विषय भी दिया गया है। इस पुराण का सुन्दर अनुवाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित हुआ है जो प्राप्य है।

अब रहो शिवपुराण तथा देवी भागवत की बात। भगवान् शंकर का चरित्र औरउन्हीं के सम्बन्ध के इतिहास तथा कथाएं शिवपुराण की विशेषता हैं। इसके तीन अनुवाद हिन्दी में हुए। पं० प्यारेलाल का अनुवाद लखनऊ से, प० रामचन्द्र शर्मा का मुरादाबाद से और पं० ज्वाला प्रसाद जी का बम्बई से प्रकाशित हुआ था। अन्तिम अनुवाद सब से सुन्दर हुआ है। आज ये अनुवाद अप्राप्य है।

देवी भागवत पुराण शाक्त धर्मावलम्बियों का प्रमाण-ग्रंथ है। इसमें देवीको सम्पूर्ण शक्तियों का कथन उनके अवतार तथा मंत्रतंत्र कवचादि का वर्णन है। देवी के पाठादिक का विस्तार है। बम्बई से प० ज्वालाप्रसाद मिश्र के अनुवाद के साथ यह पुराण प्रकाशित हुआ था किन्तु आज प्राप्य नहीं है।

इस प्रकार अठारह महापुराणों में आदि गरुड़, नारद, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड और कूर्म का तो हिन्दी अनुवाद प्रकाशित ही नहीं हुआ। अन्य पुराणों का अनुवाद जो प्रकाशित हुआ है उनमें केवल स्कन्द, मत्स्य, वायु और श्रीमद्भागवत का अनुवाद आज प्राप्य है।

श्री अगरचन्द नाहटा

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के प्राचीन हिन्दी ग्रन्थ

भारत के हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहालयों में बीकानेर की राजकीय अनूप संस्कृत लाइब्रेरी का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भारत के प्रमुख संग्रहालयों में इसकी गणना की जाती है। राजस्थान में तो ऐसा विशाल संग्रह कदाचित् है ही नहीं। सैकड़ों अप्राप्य ग्रंथ यहाँ सुरक्षित हैं। सभी विषयों के संस्कृत ग्रंथों की प्रधानता होने के साथ-साथ राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा के ग्रंथों का भी यहाँ विशाल संग्रह है। राजस्थानी भाषा के तो ग्रंथों का इतना सुन्दर संग्रह अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस लाइब्रेरी में १२ हजार से भी अधिक संख्या में हस्तलिखित प्रतियां हैं जिनमें वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौत, गृह्य, महाभारत, रामायण, पुराण, गीता, स्मृति आह्निक, तंत्र, धर्मशास्त्र, काव्य, संगीत, अलंकार, नीति, कामशास्त्र, रत्नपरीक्षा, आयुर्वेद, ज्योतिष, कोष, छंद, व्याकरण, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, जैन आदि दर्शनों के ग्रंथ एवं मंत्र तथा स्तोत्रों के ग्रंथ होने के साथ-साथ हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के विविध विषयों के ग्रंथ-रत्न विद्यमान हैं। धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, तंत्र, ज्योतिषादि के इतने अधिक ग्रंथ अन्य किसी ग्रंथालय में एकत्र नहीं मिलेंगे। विषय विविधता एवं प्राचीन प्रतियों की दृष्टि से इसका महत्त्व असाधारण है।

ग्रन्थालय का विकास व नामकरण

वैसे तो प्रस्तुत ग्रंथालय बीकानेर के नरेशों का परम्परागत संग्रह है; पर इसकी स्थापना का श्रेय संभवतः महाराजा रायसिंहजी को है। यद्यपि उस समय इसमें साधारण संग्रह ही था। इसकी विशालता एवं सर्वांगीणता विद्याविलासी महाराजा अनूपसिंहजी को महती देन है। उन्होंने बहुत से विद्वानों को आश्रय दे कर पचासों ग्रंथ निर्माण करवाये। संग्रहकर्ता भी वे अद्वितीय थे, जहाँ कहीं भी उन्हें उपयोगी ग्रंथ मिले मूलरूप में या प्रतिलिपियाँ करा कर अपने इस पुस्तकालय में संग्रह करने का उन्होंने प्रयत्न किया था। ग्रंथालय का सूचीपत्र देखने पर विदित होता है कि सैकड़ों ग्रंथों की उन्होंने प्रतिलिपियाँ करवाई हैं। इस कार्य के लिए कई मथेन[1] आदि लहिये (लेखक) नियुक्त किये हुए थे।

---

१. मूलतः जैन हैं। महात्यागी कहलाते हैं। प्रतिलिपि करना, चित्रकारी व वंशावलियां लिखना आदि इनका प्रधान कार्य रहा है।

वैसे सुप्रसिद्ध कवींद्राचार्य[1] जी का संग्रह भी उन्होंने प्राप्त कर लिया था और जैन यतियों ने उनके विद्यानुराग को देख कर हजारों प्रतियाँ भेंट कर दी थीं या जैन भण्डारों से प्राप्त हुई थीं। भटनेर का बृहद्गच्छीय ज्ञान भण्डार, व नागौरी तपागच्छीय हर्षकीर्ति सूरि का एवं खरतर-गच्छ के यतियों की प्रतियों का बहुत बड़ा संग्रह इस लाइब्रेरी में है। अनूपसिंहजी के पश्चात भी समय-समय पर परवर्ती नरेशों के द्वारा इस संग्रहालय में प्रतियों की अभिवृद्धि होती रही। इस प्रकार इसकी वर्तमान स्थिति के निर्माण में अनेक व्यक्तियों का हाथ रहा है। पर सब से अधिक श्रेय महाराजा अनूपसिंहजी को है इसीलिए पुनरुद्धार के समय इसके नामकरण में उनका शुभ नाम जोड़ दिया गया है। वैसे यहाँ प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी चारों भाषाओं के प्रचुर ग्रंथ अपभ्रंश (संदेशरास, कीर्तिलता) व मराठी भाषा के भी हैं; पर प्रधानता संस्कृत भाषा के ग्रंथों की है अतः पुस्तकालय का नाम 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' रखा गया है।

पुनरुद्धार व प्रकाशित सूचीपत्र

आज से १२ वर्ष पूर्व तक प्रस्तुत ग्रंथालय अन्यान्य सरस्वती भण्डारों की भांति सामान्य स्थिति में पड़ा था। ग्रंथों की साधारण सूची बनी हुई थी। जिसमें ५०२५ के लगभग प्रतियाँ अंकित की हुई थीं। यद्यपि डा० राजेन्द्रलाल मित्र व एल० पी० टेसीटोरी के प्रकाशित सूचीपत्रों से बहुत पूर्व ही यह प्रसिद्धि में आ चुका था। सन् १९३९ में स्व० महाराजा गंगासिंहजी ने नवीन व्यवस्था दी। संग्रहालय के अन्तर्गत एक प्राच्य ग्रंथमाला के प्रकाशन की योजना भी की गयी। निरीक्षण और व्यवस्था का भार राज्य के तत्कालीन शिक्षाध्यक्ष ठाकुर रामसिंह तथा डूंगर कालेज के प्राध्यापक पं० नरोत्तमदास स्वामी को सौंपा गया। सन् १९३९ में मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत प्राध्यापक डा० कुन्हन राजा को निरीक्षण एवं परामर्श के लिए मद्रास से बुलाया गया। आपने सन् १९४० में नवीन व्यवस्था की। समस्त विषय-विभाजन नवीन रूप से किया गया। फलतः प्रतियों की संख्या पहले से दुगुनी से अधिक हो गयी। सन् १९४४ में ग्रंथ-सूची का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। उसके बाद संस्कृत-ग्रंथों के पांच भाग और एक भाग राजस्थानी-ग्रंथ-सूची के रूप में प्रकाशित हुए। राजस्थान में संस्कृत-ग्रंथों की खोज के प्रसंग से सन् १८७४ में हरिश्चन्द्र शास्त्री ने यहाँ के संग्रह के महत्वपूर्ण ग्रंथों की सूची बनायी थी। वह सूची डा० राजेन्द्र लाल मित्र ने संपादित की थी। प्रस्तुत सूची एक बड़े ग्रंथ के रूप में Catalogue of Sanskrit manuscripts of the Maharaja Bikaner के नाम से गवर्नमेंट ऑफ इंडिया की ओर से सन् १८८० में प्रकाशित हुई थी। इस सूची-ग्रंथ में १७९३ में ग्रंथों का विवरण प्रकाशित हुआ था जिनमें कई ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं। इसके पश्चात रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल की ओर से चारणी साहित्य के अनुसंधान करने के लिए इटली के राजस्थान एवं राजस्थानी

---

[1]. सत्रहवीं शती के ये नामी व प्रभावशाली विद्वान् थे। इनके संग्रहालय की सूची बड़ौदा ओरियण्टल सीरीज से प्रकाशित है।

भाषा के अनन्य प्रेमी विद्वान एल० पी० टेसीटोरी[1] सन् १९१४-१५ में बीकानेर आये और उन्होंने-राजस्थानी साहित्य के पद्य ग्रंथों की ३२ एवं गद्य ग्रंथों की २५ प्रतियों का विस्तृत विवरण दो भागों में तैयार कर उक्त संस्था द्वारा सन् १९१८ में प्रकाशित कराया। आपने पृथ्वीराज रचित कृष्ण रुक्मिणी रीवेलि, जइतसीरो छन्द एवं राव रतन महेशदासोत री वचनिका नामक तीन राजस्थानी ग्रंथो को भी संपादित कर उक्त संस्था द्वारा प्रकाशित किया।

राजस्थानी ग्रन्थ सूची में हिन्दी ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ

विक्रम की १६ वीं शती में राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं में साहित्य निर्माण जोरों से होने लगा। इसमे पूर्व रचित प्राचीन राजस्थानी (जिसे गुजरात वाले प्राचीन गुजराती कहते हैं पर वास्तव में दोनों भाषाएँ मूलतः एक ही हैं।) की प्रायः समस्त रचनाएँ जैन विद्वानो द्वारा रचित हैं। जो दो-चार जैनेतर रचनाएँ उपलब्ध हैं वे १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की समझिये। पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासो प्राचीन माने जाते हैं। पर वे अपने मूल रूप में सुरक्षित नही रहे। हिन्दी भाषा की भी पूर्व रचनाएँ नगण्य ही हैं। १६ वी शताब्दी से राजस्थान में हिन्दी और राजस्थानी दोनो भाषाओं मे बराबर रचनाएँ होती रही। इसी समय के लगभग गुटकाकार (पुस्तकाकार) प्रतियाँ लिखी जाने लगीं, जिनमे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी राजस्थानी भाषाओं की छोटी-मोटी रचनाओ का संग्रह अधिक होता है। कोई बड़ी रचना का स्वतन्त्र गुटका भले ही मिल जाय, पर अधिकांश गुटकों में एकाधिक ग्रंथों का संग्रह रहता है, जब पत्राकार प्रतियों में प्रायः एक प्रति मे एक ही ग्रंथ रहता है। कारण स्पष्ट है कि खुले पत्र में जितने पत्रों मे एक रचना समाप्त हुई उतने पत्रों की एक प्रति हो गई, चाहे वह एक ही पत्र हो। पर गुटकाकार में जिल्द बँधी होने से अधिक पत्रों की प्रति होती है। अत उसमें एक रचना समाप्त होने पर भी पत्र खाली हैं वहां तक विभिन्न रचनाएँ लिखी ही जाती रही। वास्तव में गुटकाकार प्रतियों का आविष्कार इसीलिए हुआ था कि पत्र इधर-उधर बिखरे नहीं। एक ही प्रति में अनेक ग्रंथ व बातें संगृहीत की जा सके। छोटी-छोटी प्रसिद्ध व उपयोगी रचनाओं के संग्रह की परिपाटी ताड़पत्रीय प्रतियों में भी देखी जाती है १२ वी शताब्दी की ऐसी प्रतियाँ पाटण, जैसलमेर के जैन भंडारों मे उपलब्ध हैं। १४ वी १५वीं शती के कागज की संग्रह-प्रतियाँ अनेक मिलती हैं, गुटकाकार लेखन प्रणाली १६ वी शती से होना है।

गुटकाकार प्रतियों की उक्त विशेषता के कारण उनमें राजस्थानी व हिन्दी की कई रचनाएँ एक ही गुटके में साथ ही लिखी हुई मिलती है। राजस्थानी ग्रंथ-सूची में बहुत से हिन्दी-ग्रंथ तथा प्रस्तुत हिन्दी-ग्रंथ सूची में राजस्थानी रचनाएँ (क्वचित् संस्कृत) भी सम्मिलित हैं। हिन्दी-ग्रंथ-सूची में जिन हिन्दी ग्रंथों का उल्लेख नहीं है उनमें से कुछ उल्लेखनीय रचनाओं की नामावली नीचे दी जा रही है :—

१. आपने इस पुस्तकालय के अनेक ग्रन्थों पर लेख प्रकाशित कर इसकी ख्याति बढ़ाने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है।

क्रमांक	ग्रंथ का नाम	कर्ता	प्रति क्रमांक
१.	शनि कथा-गणेश कथा-नाजर—	आनन्दराम	प्रति नं० २०
२.	दूहा रत्नाकर—	महाराजा अनूपसिंह की आज्ञा से रचित	प्रति नं० ४३
३.	कविता—	महाराजा गजसिंह जी रचित	प्रति नं० ६९
४	सोने लोहे रो झगड़ो—	भगवान महापात्र	प्रति नं० ९९
५.	प्रेम मंजरी—		प्रति नं० १२१
६.	नाममाला—	धनजी	
७.	अनेकार्थी कोश, सागर		प्रति नं० १२६
८.	दूहा—	जसवन्तसिंह	प्रति नं० १४२
९.	तंतभागवत—	बख्तराम	प्रति नं० २३८
१०.	सुदामा चरित्र—	बलिभद्र	प्रति नं० २४०
११.	मित्रापणि ज्ञान शास्त्र—	हरिसिंह	प्रति नं० २००
१२	बाललीला——	माधवदास	प्रति नं० २५४
१३	निजोपाय (वैद्यक ग्रंथ)—		प्रति नं० २८१
१४.	सिंह सुभाषित (दो० ६१७)—	राजा देवीसिंह	प्रति नं० ८४
१५.	पिंगल अकबरी (अपूर्ण)		
१६.	हुलास मोहिनी—	मोहन	प्रति नं० १२०
१७.	आनन्द लहरी—	मोहन	प्रति नं० १२०

इनके अतिरिक्त बिहारी सतसई संवत् १७२४, व कुतुब शतक (प्राचीन हिन्दी गद्य सहित) की संवत् १६३३ की प्राचीन प्रतियाँ भी उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों की इतनी प्राचीन प्रतियाँ अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं।

पृथ्वीराज रासो के लघु-संस्करण की प्रतियाँ

कुछ समय पूर्व तक पृथ्वीराज रासो की भाषा राजस्थानी मानी जाती थी; अतः यहाँ की रासो की प्रतियाँ राजस्थानी ग्रंथ सूची में सम्मिलित की गई हैं, जिनमेंसे लघु-संस्करण की चार प्रतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रासो के इस संस्करण का पता सर्व प्रथम यहाँ की दो प्रतियों से चला था जिनका परिचय एल० पी० टेसीटोरी ने अपनी विवरणात्मक सूची में दिया था। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, इन प्रतियों के अवलोकनार्थ डा० बनारसी दासजी जैन सन् १९३० में लाहौर से यहाँ पधारे थे। तदनन्तर पुनरुद्धार के समय इस संस्करण की एक महत्वपूर्ण प्रति और मिली जिसके अन्त में इस संस्करण के उद्धारक चन्द्रसिंह का परिचायक दोहा भी मिल गया, जिसके आधार पर प्रो० नरोत्तमदास जी इसका संकलन समय निश्चित कर सके। मेरे रासो के तीन संस्करणों की प्रतियों के लेख के प्रकाशन के पूर्व तक साधारण

तया बड़े संस्करण को ही रासो माना जाता था अन्य संस्करण अज्ञात प्राय: थे। इस लाइब्रेरी की इन प्रतियों से ही रासो सम्बन्धी नई समस्या प्रकाश में आई। इस संस्करण के सम्बन्ध में डा० दशरथ शर्मा ने भी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाश डाला व इसके सम्पादन का कार्य प्रारंभ किया। मेरे उक्त लेख के प्रकाशन के पश्चात अन्य एक लघुतम संस्करण भी मिला है और उक्त लघु-संस्करण की एक प्रति मुझे फतेहपुर से सं० १७२८ की लिखित एवं मोती चन्द जी खजांची को एक प्राचीन प्रति जोधपुर से प्राप्त हुई है। फिर भी लघु संस्करण की प्रतियों की अधिकता व प्राचीनता इस लाइब्रेरी में ही है। राजस्थानी-ग्रंथ-सूची के अतिरिक्त कुछ हिन्दी ग्रंथ संस्कृत ग्रंथों के सूचीपत्रों में भी सम्मिलित हो गये हैं, जिनमें से वैद्यक विभाग फतेहपुर के नवाब अलफ खां के पुत्र दौलत खां रचित 'दउलीत विनोद सार संग्रह'[१] ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि प्रति में यह ग्रंथ पूरा नहीं है फिर भी बहुत कुछ अंश प्राप्त है। हिन्दी भाषा के वैद्यक विषयक ग्रंथों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

राजस्थान में हिन्दी-ग्रन्थों की खोज

राजस्थान में प्रान्तीय राजस्थानी के साथ हिन्दी भाषा का भी प्रचार करीब ५०० वर्ष पूर्व से चला आ रहा है। राजस्थान में हिन्दी-ग्रंथों की हजारों प्रतियाँ प्राप्त होती है एवं राजस्थान के विद्वानों व कवियों ने सैकड़ों ग्रंथ हिन्दी भाषा में बना कर हिन्दी साहित्य के भंडार की श्री वृद्धि की है। भारत में हस्तलिखित ग्रंथों की शोध का प्रारंभ सन् १८६८ में हुआ; पर उस समय सरकार व विद्वानों का ध्यान संस्कृत तथा प्राकृत के ग्रंथो के अन्वेषण की ओर ही अधिक था। अत: हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं के ग्रंथ अन्धकार ही मे पड़े रहे। बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी[१] में सैकड़ों हिन्दी ग्रंथों की प्रतियाँ अभी तक अज्ञात अवस्था मे पड़ी हुई है। हिन्दी ग्रंथों की खोज की ओर सर्वप्रथम ध्यान काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने दिया। उसकी प्रेरणा से रॉयल एशियाटिक सोसायटी एवं भारत सरकार ने सन् १८७५ से हिन्दी ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारंभ किया जो ५० वर्षों से निरन्तर चला आ रहा है, पर राजस्थान मे शोध कार्य विशेष नही हो पाया। राजस्थान विश्वविद्यापीठ के शोध संस्थान द्वारा कुछ वर्ष हुए यह कार्य प्रारंभ हुआ, पर अर्थाभाव के कारण खोज विषयक दो ग्रन्थ प्रकाशित हो कर ही रह गये, यद्यपि २-३ भाग और संपादित तैयार पड़े है।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी के हिंदी ग्रंथ-सूची का महत्त्व

राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों का सब से अधिक संग्रह प्रस्तुत लाइब्रेरी में है।

---

१. देखो दीनानाथ जी खत्री का लेख राजस्थान भारती वर्ष २ अंक २-३।

१. यहां के संग्रह के हिन्दी और राजस्थानी ग्रन्थों की प्रतियों के संग्रह में डा० एल० पी० टेसीटोरी का प्रमुख हाथ रहा है। राजस्थान से हजारों प्रतियां व प्रतिलिपियां उक्त संग्रहालय में पहुँची है।

सूची में हिन्दी ग्रंथों को २३ विभागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक विभाग की प्रतियों की संख्या इस प्रकार है :—

विभाग	प्रतियां	विभाग	प्रतियां
१. काव्य		११. गीता	१४
पद्य काव्य	२२९	१२. रामायण	२७
गद्य	१२	१३. व्रत-कथा	६
२. नाटक	४	१४. माहात्म्य	२०
३. अलंकार	६३	१५. पुराण	१३
४. संगीत	९	१६. नीति	१२
५. कोकशास्त्र	५	१७. ज्योतिष	५
६. क्रीड़ा	३	१८. वैद्यक	१७
७. छंद	४	१९. योगशास्त्र	११
८. कोश	१०	२०. वेदान्त	३०
९. इतिहास	२०	२१. बल्लभ सम्प्रदाय	३८
१०. महाभारत	३	२२. स्तोत्र	१०
		२३. सर्व संग्रह (प्रवीण सागर)	१
			५५४

हिन्दी ग्रंथों की प्रतियाँ गुटकाकार अधिक हैं। और एक ही गुटके में कई विषयों के ग्रंथ होने के कारण ग्रंथों के विषय-वर्गीकरण में गडबड़ी होना स्वाभाविक है।

अप्राप्य ग्रंथ

इस हिन्दी ग्रंथ-सूची से अप्राप्य शताधिक हिन्दी ग्रंथों एवं उनकी महत्त्वपूर्ण प्राचीन प्रतियों का पता चलता है। यहाँ कतिपय अप्राप्य ग्रंथों की सूची दी जा रही है :—

१. जसवन्त उद्योत—यह राठोड़ वश के इतिहास संबंधी उल्लेखनीय हिन्दी काव्य है। जिसमें जोधपुर के राजवंश का महाराजा जसवन्त सिंह तक का इतिहास पाया जाता है। संवत् १७०५ शाहजहांनाबाद में महाराजा के आश्रित कवि दलपति मिश्र ने इसकी रचना प्रारंभ की। इसमें १७०७ के पोकरण विजय का उल्लेख है। इसका संक्षिप्त परिचय मैंने कुछ वर्ष पूर्व हिन्दुस्तानी वर्ष १६ अंक ३ में प्रकाशित किया था। तदनन्तर सपादन कर इस लाइब्रेरी की सादूल प्राच्य ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित कराया है। जोधपुर राज्य से संबंधित होने पर भी वहाँ की राजकीय लाइब्रेरी में इसकी प्रति नहीं है। यहाँ इसकी व ऐसे ही अन्य कई हिन्दी ग्रंथों की एक मात्र प्रतियों के उपलब्ध होने से इस ग्रंथालय का महत्त्व बढ़ जाता है।

२. ग्रंथालय के प्रधान संस्थापक महाराजा अनूप सिंहजी के आश्रित हिन्दी कवियों[1] के निम्नलिखित ग्रंथों की प्रतियाँ केवल यहीं उपलब्ध होती हैं।

अनूपरसाल—उदैचन्द सं० १७२८ के आश्विन शुक्ला १०, बीकानेर

३. अनूप शृंगार—अभैराम सं० १७५४ मिगसर सुदी २

४. अलख मेदिनी—नंदराम

५. दशकुमार प्रबंध—पुरोहित शिवराम, सं० १७३४ लिखित

६. लक्ष्मीनारायण पूजा—जनार्दन भट्ट

७ गीता महात्म्य (आनंद विलास) नाजर आनंद राम रचित सं० १७६१

बीकानेर के अन्यान्य महाराजाओं व राजकुमारों के लिए रचित अन्यत्र अप्राप्य ग्रंथ—

८. कृष्ण चरित सटीक-कर्ण भूपति

९. भर्तृहरि शतक भाषा—यति नयनचन्द रचित सं० १७८६ विजयादशमी

१०. कविप्रिया—(सहज राम चन्द्रिका टीका) महाराजा गजसिंहजी के (महाराज कुमार आनंद सिंह के कथन से) नाजर सहजराम रचित, सं० १७३४ लिखित।

११. वैद्यकसार—जोगीदास रचित सं० १७९२ महाराजा सुजान सिंह के कुंवर जोरावर सिंह के लिए रचित

१२. ज्ञान वर्णमाला—
१३. ज्ञान शतक } बलदेव जैन पाटनी रचित महाराजा मेघसिंह के लिए

अन्य स्थानों के महाराजाओं व उनके आश्रित कवियों के रचित—

१४. भगवद्गीता भाषा टीका
१५. दूहा संग्रह } महाराजा जसवन्त सिंह

१६. जुगल विलास—महाराजा पृथ्वीसिंह रचित

१७. रसशिरोमणि—महाराजा रामसिंह जी रचित, सं० १८३० माघ सुदी १५

१८. नह तरंग—रावराजा बुधसिंह रचित, सं० १७९४ भाद्रपद सुदी ४

१९. फुटकर कवितादि—जवानी सिंह

२०. पदमुक्तावली—सवाई प्रताप सिंह देव

२१ शृंगार शतक—महाराजा देवीसिंह—सं० १७२१ जेठ वदी ९

२२. रसिक हुलास—सूरदत्त—सं० १७१६ अमरसर के कृष्णचन्द्र के लिए

२३. अमरु शतक भाषा—पुरुषोत्तम रचित—सं० १७२० पौष वदी २

२४. रामायण तत्व—पुरुषोत्तम रचित—सं० १७०७ माघ वदी ६

२५. छंदो हृदय प्रकाश—मुरलीधर—सं० १७२३ कार्तिक शुक्ला ५ (कुमाऊँ नरेश

---

१. देखो 'बीकानेर समाचार' में प्रकाशित मेरा लेख।

बाज चन्द के लिए मार्तण्डगढ़ के महाराजा हृदयनारायण देव के प्रोत्साहन से रचित)

२६. समयसार—रामकवि—सं० १७३५ (शिवपुरी के कूर्म वंशीय महाराजा आनन्द सिंह के आश्रय में रचित)
२७. ज्ञान सार—रामकवि—सं० १७३४ श्रावण शुक्ला ७
२८. रसरत्नाकर—हृदयराम—सं० १७३१ वैशाख शुक्ला ५
२९. रामचरित—सुन्दरदास
३०. रूपावती—सं० १६५७ फतेपुर के नवाब अलफ खां के समय में रचित
३१. सूरज सरदार—बिहार मंजरी—सूरज सरदार
३२-३३-३४ रासलीला, दानलीला, कवचादि—सूरज मिश्र
३५. कवीन्द्र चंद्रिका—सुखदेवादि कई कवि
३६. रसिक विलास—केसरी कवि (ब्रजराज सुजान हित)
३७. दुर्गासिंह शृंगार—जनार्दन भट्ट—स० १७३५
३८. व्यवहार निर्णय—जनार्दन भट्ट—सं० १७३७
३९. दामोदर लीला—नददास
४०. कविसागर—आलम
४१ पद्मावली—गोविन्ददास
४२. बिहारी सतसई टीका—ला० ब्रजलाल
४३. बिहारी सतसई टीका हरिचरण
४४. कृष्ण रुक्मिणी विवाह—ला० कृष्णदास
४५. नाम कोश
४६. भरथरी सवाद—हरिदास सं० १६९९
४७. भंवर लीला—रसिकराय
४८ विवाह मंगल—गुनराय
४९. ध्रुव चरित्र—सुखदेव
५० रामदास—रूपदेवी
५१. रुक्मणी मंगल—रूप देवी
५२. बैताल पच्चीसी—भगतदास (अकबर के समय में)
५३. कीर्तिलता—संस्कृत टीका
५४. ज्ञानानंद नाटक—लछीराम
५५ से ६० रागविचार, दंपतिरंग, ब्रह्म तरंग, ब्रह्मानंदिनी, विवेक सार, ज्ञान कहानी—लछीराम रचित
६१. हनुमान्नाटक—जगजीवन

६२. पीपा चरित—जीवणदास
६३. भर्तृहरि चरित—जीवणदास
६४. हरिभक्ति विरदावली—जीवणदास
६५. रागमंजरी—भूधर मिश्र—१७३०
६६. रात रंजनी
६७. रस सागर—सैद पहार
६८. विवाह लीला (गोकुलेश चरित)—जगनंद
६९. गज शास्त्र (अमर सुबोधिनी टीका) माधव निदान भाषा
७०. चंपू समुद्र—भूप—सं० १७२५ वि० लिखित
७१. पाण्डव विजय—मलूकदास
७२. छंदोग्योपनिषद प्रबंध—हरिराम
७३. सुदामा चरित—बीरबल
७४. प्रवीण प्रकाश
७५. अलवर नरेश प्रशस्ति
७६. राधा मिलन
७७ नाममहातम—जीवणदास स० १७२१
७८. संगीतसार—गोपाल
७९. संगीत मालिका—महमद साहि
८०. अध्यात्म रामायण—माधोदास
८१. आत्मविचार—माणक
८२. वचन विनोद—आनंदराम कायस्थ, स० १६७९ लिखित
८३. रस विलास—चिंतामणि
८४. महाभारत (अपूर्ण) गंगाराम
८५. भागवत माहात्म्य—नानकदास

इनके अतिरिक्त दुष्प्राप्य ग्रन्थों मे जान कवि रचित ग्रंथ आदि अनेक रचनाएं हैं। सत साहित्य व वल्लभ संप्रदाय के ग्रन्थ भी कुछ महत्व के हैं।

अनुपलब्ध हिन्दी-ग्रन्थ

प्रस्तुत सूची के विक्रम विलास ग्रन्थ में 'माधवानल कथा' और उदाहरण नाटक एवं दलपति मिश्र के जसवन्त उद्योत में उनके अन्य ग्रन्थ 'रसरत्नावली' का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों की प्रतियाँ अभी तक कहीं प्राप्त नहीं हैं; अतः खोज करना आवश्यक है।

---

१. देखो मेरा 'राजस्थान भारती' में प्रकाशित लेख।

महत्त्वपूर्ण प्राचीन प्रतियां

१. महाकवि सूरदास रचित पद "सूर सागर" के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन पदों की कई महत्त्वपूर्ण प्रतियां इस लाइब्रेरी में हैं जिनका परिचय मैंने "राजस्थान भारती" वर्ष १, अंक २-३ में प्रकाशित किया है। इन प्रतियों में सं० १६८५ व १६५९-९८ की लिखित प्रतियां प्राचीनता की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं जिनका परिचय विशेष रूप से श्री दीनानाथ जी खत्री ने राजस्थान भारती वर्ष १, अंक २ में प्रकाशित किया है। सूरसागर के संपादन में इनका उपयोग करना परमावश्यक है। आजकल जितने पद सूरदास जी रचित कहे जाते हैं वास्तव में उनके इतने पद हैं नहीं, बहुत थोड़े हैं। अतः प्रक्षिप्त पदों की छानबीन शीघ्र होनी चाहिए। सूरदास जी के रामचरित सम्बन्धी पदों की अपूर्ण प्रति भी यहां प्राप्त है, जो महत्त्वपूर्ण है।

२. कुतबन की 'मृगावती' हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध ग्रन्थ है; पर इसकी पूरी प्रति अभी कहीं भी उपलब्ध नहीं है। बनारस के हरिश्चन्द्र पुस्तकालय में इसकी प्रति थी जो अब गुम हो गई। नागरी प्रचारिणी सभा में इसका थोड़ा सा अंश ही प्राप्त है। यहां की प्रति भी प्रारंभ के कई पत्र प्राप्त न होने से स्खलित रूप में उपलब्ध है, पर कथा का बहुत सा अंश प्राप्त होने से व प्रति के प्राचीन कैथी लिपि में लिखित होने से महत्त्वपूर्ण है। उसका परिचय श्री दीनानाथ जी ने राजस्थान भारती वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित किया है।

३. कवित्तादि फुटकर संग्रह को यहां बहुत सी प्रतियां हैं जिनसे कई नवीन कवियों व उनकी कविताओं का पता चलता है। बहुत से प्रसिद्ध कवियों के अज्ञात कवित्तादि भी इन सग्रह प्रतियों में प्राप्त हैं।

उपर्युक्त अप्राप्य ग्रन्थों में से अधिकांश की प्रतियां रचना-समय के समकालीन लिखित होने से भी महत्त्वपूर्ण हैं। आनंद रचित कोकसार की सं० १६८२ की एवं बिहारी सतसई, अमर चंद्रिका, आनंद विलास तथा उर्वशी नाममाला की प्रति भी समसामयिक यहां उपलब्ध हैं।

जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है प्रस्तुत सूची बड़ी सावधानी व श्रमपूर्वक बनाई गई है फिर भी दृष्टिदोष व भ्रमवश दो-चार अशुद्धियां रह गई हैं जिनका संशोधन करते हुए विशेष ज्ञातव्य बातें सूचित करना भी आवश्यक है।

पृष्ठ १०. जुगलविलास के रचयिता पीथल को पृथ्वीराज राठौड़ लिखा गया है। इससे उसके रचयिता बेलि के निर्माता पृथ्वीराज के होने का भ्रम होने की सभावना है। मुझे भी पहले यही भ्रांति हुई थी; पर स्थानीय खटहर आचार्य शाखा के ज्ञान भंडार में इस ग्रन्थ की अन्य एक प्रति उपलब्ध होने से उसके रचयिता महाराजा पृथ्वीसिंह (म० मानसिंह के पुत्र) व रचनाकाल सं० १८०१ (सुरतरू नमवसुससि) निश्चित हो गया है।

पृष्ठ ९५. प्रेम रत्नाकर का रचयिता भैया रत्नपाल बतलाया गया है; पर वास्तव में जैसा कि विशेष विवरण में निर्देश किया गया है इसका रचयिता देवीदास है। भैया रत्नपाल के लिए तो यह ग्रन्थ रचा गया है। ग्रन्थ के रचनाकाल का निर्देश भी छूट गया है। ग्रन्थ में सं० १७०२ दिया हुआ है।

पृष्ठ ७६. रूपावती का रचनाकाल १६५३ बतलाया गया है; पर वास्तव में वह १६५७ है। रचनाकाल सूचक दोहे में सं० १००९ हिजरी व विक्रम "सोलह सतपन" दिया है। सतपन शब्द ५७ का सूचक तो है ही १००९ हिजरी भी १६५३ नहीं १६५७ ही पड़ता है।

पृष्ठ ८०-९२ मे 'काव्य सिद्धान्त' व 'मदन शतक' की प्रतियां अपूर्ण मिलने से ग्रन्थकार का नाम नहीं दिया जा सका; पर काव्य सिद्धान्त की पूर्ण प्रति इसी लाइब्रेरी के राजस्थानी विभाग में है। इसके अनुसार इसके रचयिता सूरत मिश्र है एवं मदन शतक के रचयिता कवि दास है। हमारे संग्रह मे भी इसकी कई प्रतियां है।

परिशिष्ट परिचय

प्रस्तुत सूची को अधिकाधिक उपयोगी और ज्ञातव्य बनाने का खत्रीजी ने बहुत प्रयत्न किया है। ग्रन्थ मे आये हुए ग्रन्थों तथा ग्रंथकर्ताओं की अकारादि क्रमणिका देने के साथ-साथ परिशिष्ट में आपने प्रतियों के लेखकों व संग्राहकों की नामावली एवं रचनाकाल और प्रतिलेखन समय की भी अनुक्रमणिका दे कर ग्रन्थ की उपयोगिता बहुत बढा दी है। प्रथम परिशिष्ट मे हजार से अधिक ग्रन्थों के और दूसरे मे ७०० के लगभग ग्रन्थकारों के नाम है। पांचवे परिशिष्ट से विदित होता है कि प्रस्तुत सूची में आये हुए ग्रन्थ सं० १५७५ से १९८७ तक के रचित है एव लेखन समय की अनुक्रमणिका से उनकी प्रतियां सं० १६३८ से १९६३ तक लिखित ज्ञात होती हैं।

प्रकाशन

हर्ष की बात है कि ग्रन्थालय के पुनरुद्धार के समय यहा के महत्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए स्व० महाराजा गंगासिंहजी ने दो ग्रन्थमालाए भी स्थापित की थीं जिनमें से गंगा ओरियंटल सीरीज' से सस्कृत एवं सादूंल ओरियंटल सीरीज' से राजस्थानी एवं हिन्दी ग्रन्थों के प्रकाशन का प्रबन्ध किया गया है। हिन्दी भाषा का केवल एक ही ग्रन्थ 'जसवंत उद्योग' प्रकाशित हुआ है।

---

१. ग्रन्थमाला से अभी तक निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं :—
   - १ अनूपसिंह गुणावतार १)
   - २ अकबर अहि शृंगार दर्पण २)
   - ३ जगद्विजय छंद ३।)
   - ४ मुद्रा राक्षस पूर्व संकलन १।।।)
   - ५ संगीतराज (कुंभकर्ण) भाग १ ३)
   - ६ टोडरानंद (धर्मशास्त्र) १०)
   - ७ मदन रत्न व्यवहार कांड (धर्मशास्त्र) मदन सिंह १२)

२. प्रकाशित राजस्थानी भाषा के ग्रन्थ ये हैं—
   - १ गीत मंजरी २)
   - २ राजस्थान वीर गीत भाग १ ३)
   - ३ दयालदास की ख्याति ६)

श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा

हिन्दी के तीन नये उपन्यास: एक अध्ययन

नदी के द्वीप	सूरज का सातवाँ घोड़ा	परन्तु
'अज्ञेय'	धर्मवीर भारती	प्रभाकर माचवे

प्रेमचन्द का युग जैनेन्द्र और भगवतीप्रसाद बाजपेयी के बाद समाप्त हो चुका है। उस काल की आदर्शवादिता और संतुलित राष्ट्रीय चेतना एवं प्रारंभिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की परम्परा आज विकसित हो कर यथार्थवादी रोमान्स और प्रौढ़ मनोवैज्ञानिक चिन्तनशील शैली में बदल गयी है। प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यास एक समस्या की पूर्ति के आधार पर लिखे गये थे। रंगभूमि के सूरदास, निर्मला, होरी और गोबर (गोदान के) के व्यक्तित्व एक व्यापक जन-जीवन के संघर्षात्मक प्रवृत्तियों को लेकर निर्मित किये गये थे जिनमें लेखक की मन:स्थिति और योग का काफी सम्बल था। भगवतीप्रसाद बाजपेयी की 'दो बहनें' एक सामाजिक समस्या प्रस्तुत करती थी, भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' भी एक दार्शनिक समस्या की पूर्ति के लिए ही प्रेरणा पा चुकी थी; जैनेन्द्र जी 'असंतुलित मनोविज्ञान' की समस्याओं के अनुसार पात्र चुनते थे—

किन्तु

उपन्यास के पात्रों में स्वत: विकसित होने की प्रवृत्ति होती है (चाहे वह विकास अच्छा हो या बुरा) इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। समाज में सुन्दर ही सुन्दर है, इसकी कल्पना ही लेखकों के लिए संतोषजनक थी। नायक खल भी हो सकता है, उसमें भी सहज मानवीय दुर्बलताएँ हो सकती हैं, इस ओर इस युग के लेखक कम ध्यान देते थे।

सब कुछ समाज है, व्यक्ति का भी अस्तित्व होता है यह विचार उपन्यासों में नहीं चित्रित हो पाता था। भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' में और 'टेढ़े मेढे रास्ते' में यह कमी खटकती है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी भी इस दिशा में असफल रहे हैं।

प्रगतिशील लेखकों (जैसे यशपाल और अंचल) के उपन्यास काल्पनिक वर्ग-संघर्ष की गुत्थियों में पड़ कर शिल्प और कथा-वस्तु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं सिद्ध हो सके हैं। इन लोगों ने यथार्थवाद को भी साम्यवादी आवरण में लपेट रक्खा है, फलस्वरूप इनके प्रायः सभी पात्रों के शरीर पर वर्ग-चेतना का मुलम्मा लगा हुआ है जो यथार्थ जीवन से अलग है।

इसके विपरीत

अश्क, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, डाक्टर देवराज और धर्मवीर भारती ने एक नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है. जिसमें व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है और व्यापक मान्यताओं को हटाकर उनके पात्रों की असलियत देखने की चेष्टा की गयी है जैसे गिरती दीवारों का 'चेतन', शेखर का 'शेखर', परन्तु का 'अविनाश', पथ की खोज का 'चन्द्रनाथ' और 'गुनाहों के देवता' का 'चन्दर'।

जो स्वाभाविकता प्रेमचन्द की अपनी शैली मे थी उसमें भी आदर्शवाद की छाप थी किन्तु इस आदर्शवाद की दूसरी ओर भयानक यथार्थ है जिसको चित्रित करने में उस युग के लेखक हिचकिचाते थे। केवल इलाचन्द्र जोशी ने बिना किसी आवरण के उनको प्रस्तुत करने की चेष्टा की है लेकिन उनकी शैली में वह सामर्थ्य नहीं दिखलाई पड़ता जो उनके मनोनीत प्रयास को सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर सकता।

अच्छा या बुरा इस दिशा में केवल अज्ञेय ही सफल रहे हैं। 'शेखर—एक जीवनी' को चाहे कोई 'फ्राइडियन काम्पलेक्स' कहे या अश्लील, यह मानना पड़ेगा कि उसने हिन्दी उपन्यास की लेखन शैली में सर्व प्रथम पात्रों को स्वतः विकसित हो कर स्वाभाविक ढंग से व्यक्त होने का माध्यम स्वीकार किया है। प्रभाकर माचवे का शिल्प उखड़ा-उखड़ा सा दिखाई देता है; डाक्टर देवराज दार्शनिक उलझनों में पात्रों को फँसा कर उनको तड़पते हुए छोड़ देते हैं ; भारती शिल्प सौन्दर्य को मानते हुए कहीं कहीं बचकाने से लगते हैं। पंजे के बल एड़ी उठा कर खड़े होने पर भी वह पात्रो की उँचाई तक पहुंचने में असफल रहे हैं। इसलिए प्रौढ़ शिल्प और पात्र प्रधान कथा-वस्तु के निरूपण में केवल अज्ञेय को ही सफलता मिल सकी है।

और

केवल इसी दृष्टिकोण से गत डेढ़ वर्षों के प्रकाशित उपन्यासों में हमें यह देखना है कि—

(१) उपन्यास-शैली का विकास प्रेमचन्द के बाद किस सीमा तक पहुँचा है ?

(२) जिस शैली अथवा शिल्प का प्रयोग आज किया जा रहा है वह कहाँ तक संगत है और फिर उसमें कौन-सी ऐसी त्रुटियाँ हैं जो कथा-वस्तु की स्वाभाविकता को नष्ट कर देती हैं अथवा उनको चमका देती हैं ?

(३) साहित्यिक प्रतिभाओं में प्रबंध का संतुलन किस सीमा तक हो पाया है और उस संतुलन में पात्रों के स्वतंत्र विकास में लेखक को कहाँ तक सफलता मिली है ? किसी भी वस्तु की निन्दा करना और उसके कलात्मक पक्ष की आँखें बन्द कर के अवहेलना करना तो ठीक नहीं।

(४) कथा-वृत्ति मे स्वाभाविकता और सहजता किस सीमा तक है ? कहाँ लेखक स्व-निर्मित पात्रों के मोह में पड़ कर उनको छाप लेता है और कहाँ उनको अपने आप बढ़ने देता है ?

(५) साहित्य की परम्परागत मान्यताओं के प्रति लेखक की उदासीनता औचित्य की दिशा की ओर है, नई परम्परा को जन्म देने की ओर है या केवल चमत्कार पैदा करने में है? क्योंकि चमत्कार को जादू कहा जा सकता है, कला नहीं—कला का विकास स्वाभाविकता में ही होता है—चमत्कार तो निम्न कोटि की कला-तृष्णा है।

इन बातों को दृष्टिकोण में रखते हुए

आधुनिक हिन्दी उपन्यास की सम्भावित गतिविधि किस दिशा को इंगित होगी या हो सकती है इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है। पिछले डेढ़ वर्षों में जो उपन्यास हमारे सामने आये हैं उनमें से 'नदी के द्वीप', 'पथ की खोज', 'परन्तु' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में शिल्प के नये प्रयोग, कथा-वस्तु की मौलिक धारणा, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और पात्र-संचयन का विशेष महत्व है। यद्यपि इन समस्त वस्तुओं के प्रति काफी प्रहार किया जा रहा है किन्तु यह मानना पड़ेगा कि शिल्प और कथा-वस्तु के साथ-साथ पात्रों के सहज मनोवैज्ञानिक विवेचन में एक नया कदम उठा है—भले ही वह अभी पूर्ण रूप से प्रौढ न हो पाया हो। इस दृष्टिकोण से

नदी के द्वीप

एक सर्वथा नया प्रयोग है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि 'नदी के द्वीप' अज्ञेय के 'शेखर' के अर्द्ध विकसित अहम् का परिशिष्ट है फिर भी इसमें उपन्यास के मौलिक तत्वों की हत्या नहीं की गयी है और न तो किसी आदर्श विशेष पर आक्षेप ही किया गया है। हाँ, 'नदी के द्वीप' का प्रतीक जीवन के एकांगी तत्व का प्रतिष्ठापन करता है और उसको स्वीकार करने के लिए उपन्यास को लेखक के दृष्टिकोण से देखना आवश्यक है। संक्षेपतः हम लेखक के मन्तव्य को इस प्रकार रख सकते हैं—

(१) 'नदी के द्वीप' के सभी पात्र सुशिक्षित, चिन्तनशील और मानवीय संवेदनाओं को स्वीकार करते हुए एक सीमा तक असाधारण है—एक विशेष 'प्रकार' के हैं—यह बात और है कि उनका प्रकार बहुत सीमित है।

(२) उपन्यास में 'बेहद दर्द' है—हार्डी की निराशावादी प्रवृत्ति और वास्तविकता का अंश पर्याप्त मात्रा में है। बौद्धिक स्तर पर प्रायः सभी अनुभूतियाँ पीड़ामय हो जाती है और 'नदी के द्वीप' के प्रायः सभी मुख्य पात्र पीड़ा से ओत-प्रोत हैं।

(३) वर्तमान समाज में परम्परागत मान्यताओं की निष्प्राण शक्तियों को अनावरण कर के प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है और नये मूल्यों को आँकने का आग्रह भी है लेकिन वे नये मूल्य स्वभावगत मानवीय चिन्तना के अन्तर्गत हैं, किसी अलौकिक सत्य के प्रति नहीं।

(४) प्रेम अथवा रोमान्स की पृष्ठिभूमि में लेखक ने उपन्यास के क्षेत्र को केवल उसी तक सीमित रखने की चेष्टा की है इसीलिए उसके पात्र केवल एक ही दिशा को प्रस्तुत करते हैं

और अन्तर्निहित कथा की मौलिकता को गठित रूप में प्रस्तुत करने के हेतु अनावश्यक रूप से नहीं भटकते। वे स्थिर हैं और जीवन के केवल एक विशेष पहलू को प्रदर्शित करते हैं।

(५) प्रायः सभी पात्र एक दूसरे के समीप हैं किन्तु उनमें से प्रायः सभी का अहम् एक दूसरे के प्रति झुकता-सा नहीं प्रतीत होता, सभी अपनी-अपनी धुन में हैं; अपने-अपने स्थान पर दृढ़ हैं।

फिर भी

भुवन का अहम् उपन्यास के प्राय. अन्य पात्रों को सामान्य रूप से प्रभावित करता है। भुवन के चारों ओर रेखा, गौरा और चन्द्रमाधव पूरक के रूप में नाच रहे है। वृत्ति के घुमाव मे रेखा भुवन के अधिक निकट आ जाती है, आत्म-समर्पण तक कर देती है किन्तु उसका अहम् इतना प्रबल है कि उसके सामने उसकी मातृत्व भावना भी नहीं झुक पाती—वह भुवन के ऊपर कोई बोझ नहीं डालना चाहती, यहाँ तक कि भुवन के रक्तमांस से पनपे हुए ज्योति पिण्ड की भ्रूण हत्या तक कर देती है और भुवन को इस घटना के प्रति क्षोभ तो होता है किन्तु फिर अपने को संभाल लेता है। गौरा एक दूसरे वातावरण में भुवन के निकट है जो कि बचपन से लेकर अन्त तक का विस्तार लिये हुए है, लेकिन गौरा भी एक विशेष प्रकार है। उसमें रेखा का सा तीखापन नहीं है, वह साधारण है। भुवन के प्रति उसकी भावना सामान्य है किन्तु उस सामान्य मे एक पीड़ा है जो अव्यक्त रूप से उसे व्यथित बनाये रहती है। चन्द्रमाधव एक 'स्टण्ट' के रूप मे है जो कुछ हद तक संकीर्ण एवम् स्वार्थरत हो कर उपन्यास के कथानक में गाँठें देता चलता है। इस प्रकार उपन्यास एक सीमित वृत्त मे बँध कर विकसित होता है और हम यह कह सकते है कि वह वृत्त संकीर्ण एवम् छोटा ही सही लेकिन उसमे जीवन की आवश्यक अनुभूतियों की अवहेलना नहीं की गयी है बल्कि वातावरण के अनुकूल वस्तुस्थिति के प्रति ईमानदारी बरती गई है।

'नदी के द्वीप' इसीलिए न तो घटना-प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है, न उसे हम वस्तु-प्रधान ही कह सकते है, वह केवल चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास में न तो किसी सामाजिक क्रान्ति अथवा उपक्रान्ति की बात की गयी है और न उसमे किसी विशेष आदर्श और विचार ही का प्रतिपादन किया गया है। यह केवल कुछ 'असाधारण' व्यक्तियों की कहानी है जो 'लीक' से हट कर चलती है और शायद इसीलिए उसे कुछ लोग अस्वाभाविक भी कह सकते हैं लेकिन उस अस्वाभाविकता की पृष्ठभूमि मे कुछ वास्तविक सत्य है जिनको देखने मे पात्रों की सहज स्वाभाविकता स्पष्ट हो जाती है।

और वे हैं

(१) किसी भी स्त्री का स्वाभाविक चरित्र उस स्थिति में क्या होगा जब कि उसका पति उसके रूप और सौन्दर्य की अवहेलना कर के उसके सामने ही किसी दूसरी स्त्री को अपने प्रणय की नायिका बना ले और उसकी अवहेलना करके तिरस्कृत कर दे? यह कह देना कि— उसे अपने पति के प्रति सत्यनिष्ठा रखनी चाहिए—तो बड़ा सरल है किन्तु असत्य के प्रति

सत्यनिष्ठा रखना क्या सत्य का मजाक उड़ाना नहीं है ? स्वयं पौराणिक कहानियों में ऐसी परिस्थितियों को केवल दैविक सहायता लेकर ही संभाला गया और यह दैविक सहायता आज के तर्क-प्रधान युग में असंगत है।

(२) क्या आज के जीवन में वे मूल्य वर्तमान हैं जो आज से बीस वर्ष पहले थे ? आज की सामाजिक मान्यताए शिथिल हैं; आर्थिक विधान सड़ चुके हैं; जीवन का परम्परागत प्रवाह एक दूसरी दिशा में मुड़ चुका है, फिर ऐसी दशा मे उस समस्या का क्या हल होगा जो जीवन में ठहराव पैदा कर के उसके तत्त्वो को सड़ा रही हैं ? रेखा जिसके पति ने बिना किसी दोष के उसे तिरस्कृत कर दिया है यदि इन समस्त परिस्थितियों के प्रति विद्रोह करती है तो इसमें उसका दोष भी क्या है ? विरोधाभास को सहन करना स्वाभाविक है या उनके प्रति विद्रोह करना ?

(३) यदि किसी उपन्यास में केवल वस्तु स्थिति का वर्णन हो और उसमें किसी आदर्श का सहारा लेकर किसी भी विषय पर कोई मत न प्रकट किया जाय तो क्या वह साहित्यिक कृति नहीं कहा जायगा ? 'नदी के द्वीप' में लेखक ने कुछ भी नही कहा है, उसने केवल पात्रों के संघर्षों द्वारा वस्तुस्थिति की प्रतिक्रियायें प्रस्तुत की हैं जैसे रेखा एक विशेष स्थिति की प्रतिक्रिया है, गौरा एक विशेष 'प्रकार' की प्रतिनिधि, भुवन एक असाधारण व्यक्ति है, चन्द्रमाधव एक पतित लिप्सा का साधक है।

(४) भुवन का व्यक्तित्व और रेखा का व्यक्तित्व आज समाज के व्यापक-जीवन के सामने कई प्रश्न चिह्न प्रस्तुत करते हैं और वे यह कि—

(अ) आज का व्यक्ति बौद्धिक भावनाओ के अतिरेक में बहना चाहता है—किन्तु व्यवस्था के प्रति उसकी आस्था नही है क्योंकि व्यवस्था का रूप आज एक नही है—जो प्रचलित है वह समयानुकूल नही है—जो होना चाहिए वह हो नही पाता—फिर ऐसी परिस्थिति मे भुवन और रेखा जैसे पात्र समाज मे रहेंगे, उन्हें रोकने के लिए हमें जीवन की गहराइयों में जा कर नये सिरे से व्यवस्था स्थापित करनी होगी—किन्तु यह सब क्यो और कैसे ?—

(ब) आज नारी-जीवन को केवल परम्परागत मान्यताओ में बाँध कर नही रक्खा जा सकता। रेखा उस परम्परा की प्रतिक्रिया है जिसमें पति के दोष देखना वर्जित है किन्तु रेखा की भांति तिरस्कृत स्त्रिया आज भी समाज में हैं...उनकी अवहेलना नही की जा सकती; फिर रेखा जिन परिस्थितियों में विकसित होती है उनको ध्यान में रखना होगा और तब उसका मूल्यांकन करना होगा—क्या रेखा के व्यक्तित्व में वैवाहिक-जीवन की उखड़ी कड़ियों की झलक नहीं मिलती ? फिर ऐसी दशा में रेखा की परिस्थितियों का निराकरण कैसे किया जा सकता है ? /

(५) 'नदी के द्वीप' और 'क्षणवाद' के सिद्धान्त और प्रतीक जीवन के सम्पूर्ण दृष्टिकोण को नहीं प्रस्तुत करते किन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि एक ओर जहाँ सामूहिक चेतना में 'आतंकवाद' प्रश्रय पाता है वहीं से व्यक्ति की सामहिक चेतना टूट कर खंड-खंड होकर द्वीप-पिण्ड

बन कर फैल रही है ? और क्या यह खण्डित जीवन सिवा 'क्षणवाद' (इक्जिस्टेन्शलिज्म) के सिवा किसी और आधार पर टिकाया जा सकता है ?—वह आधार क्या है ? उसका वास्तविक माध्यम क्या हैं ? बिखरे हुए जीवन में प्रत्येक क्षण ही जीवन होगा, सत्य होगा—आगे आनेवाले क्षण पर भरोसा कैसे किया जा सकता है क्योंकि समाज में आज के दिन कोई एक व्यवस्था का रूप तो है नहीं ?—

इसलिए यह मानना पड़ेगा कि भुवन, रेखा, चन्द्रमाधव और गौरा जीवन की विभिन्न विकृत परिस्थितियों की प्रतीक है—भुवन जीवन के प्रति भयभीत दृष्टिकोण रखता है, रेखा में अनावश्यक साहसिकता (एड्वेन्चरिज्म) है, चन्द्रमाधव अर्थ-प्रधान युग में केवल अर्थ का दायित्व समझता है, नैतिकता का लेश-मात्र भी उसमें नहीं है; गौरा में संस्कार हैं पर बल नहीं, इसलिए

भुवन

आधुनिक युग का एक बुद्धिवादी व्यक्ति है जिसमें वैज्ञानिक तर्क-वितर्क के घात-प्रतिघात और जीवन की बदलती हुई मान्यताओं की पीड़ा है । भुवन को पूर्णतः 'मूडी' नहीं कहा जा सकता यद्यपि उसमें कुछ आंतरिक कुंठा (आब्सेशन) है । वह दुःख, वेदना, पीड़ा के प्रति स्वाभाविक रूप से झुकाव रखता है । उसमें रोमान्स की जवानी नहीं है, वासना की अतृप्त तृष्णा है जिसको वह सत्य मानता है । उसका विज्ञानवादी तर्क उसे सत्य और तथ्य के बीच एक शुष्क और रसहीन तत्त्वान्वेषी बना कर छोड़ देता है क्योंकि—

(अ) "**भुवन अनुभूति से बचता है** और विराट अनुभूति के प्रति समर्पण की बात करता है" (पृष्ठ ५०)

(ब) "**भुवन ने घर-गिरस्ती की चिन्ता जानी नहीं.... दुःख को दूर से रोमेन्टिक कल्पना की** है.... इसीलिए बातें बना सकता है । अगर सचमुच दुःख उसने जाना होता—दुःख कैसे तोड़कर चूर चूर कर देता है—दृष्टि देना तो क्या आँखों को अंधा करके पपोटे निकाल कर उनमें कीचड़ भर देता है—तो उसकी जबान ऐंठ जाती"—(पृष्ठ ४८)

(स) "**भुवन का यह मत है कि—"आत्मा के नक्शे नहीं होते कि हम झट से फैसला दे दें ।** इस सीमान्त के इधर स्वदेश, उधर विदेश, इधर पुण्य उधर पाप । **आत्मा के प्रदेश में सीमान्त हर क्षण, हर सांस के साथ बदल सकता है क्योंकि हर क्षण एक सीमान्त है**" (पृष्ठ ९६)

(द) भुवन की व्याख्या करते हुए चन्द्रमाधव कहता है—"...पर भुवन जैसे **विज्ञान** के नशेबाज व्यक्ति की बात को महत्व भी दे दिया जा सकता है (क्या) ? **वह तो उब डूब भी नहीं है, डूब डूब है** : और उस सागर से उबरना नहीं होता ! यों आप के सामने निश्चय ही स्पष्ट कर्तव्य पथ होगा ऐसा मेरा विश्वास है"... (पृष्ठ ९९)

(ध) भुवन स्वयं अपने बारे में कहता है—"....कोई कोयला इतना काला नहीं होता कि सुलग कर लाल नहीं हो सके ! **मुझे भी दैवी अनुकम्पा कभी-कभी छू जाती है और**

नेक काम कर बैठता हूँ"—यह उसकी आत्मसाथ पीड़ा की कुटन-श्रद्धा है जिसके बल पर वह काले कोयले से प्रकाशपूर्ण अंगार बनने की कामना करता है।

(न) भुवन में कायरता नहीं है। वह रेखा से एक पत्र में कहता है—"लेकिन आज भी मैं कितना भी कठोर हो कर सोचूं तो मानता हूँ कि उस अजात के कारण जो भी जिम्मेवारी मुझ पर आती उससे मैं भाग नहीं रहा था . . . भागने का विचार भी नहीं था और उसे स्वीकार करने में मुझे खुशी ही होती . . . . आज भी मानता हूं खुशी ही होता"—(पृष्ठ ३४३)

(य) भुवन केवल क्षण के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता लेकिन उसके सामने केवल वर्तमान है, वह भविष्य के कल्पना-स्वप्न (डे-ड्रीमिंग) में विश्वास नही रखता। वह कहता है—"भविष्य के बारे में कोई भी दावा करना बेईमानी है, फिर उस भविष्य के, जिसकी कोई सम्भावना नहीं . . . . (पृष्ठ ३४३)

(र) भुवन जीवन की व्यापक मान्यताओं को, चिरन्तन मूल्यो को अपने जीवन से नोच कर फेंकना नहीं चाहता . . . जहाँ वह निरा तर्क-युक्त है वहीं उसके अन्तर में एक सरस स्पर्श भी है जिससे प्रभावित हो कर वह कहता है—"अपने एक अंश को, जो स्वयम् भी मूल्यवान् था, नष्ट हो जाने दिया, रेखा; उस अंश को जो स्वयम् भी मूल्यवान् था और उससे भी बढ़ कर जो एक और मूल्यवान अनुभूति का फल था—" (पृष्ठ ३४५)

(ल) भुवन की निराशा में आकर्षण है—शायद देखनेवालों की सहानुभूति ही प्रेम में बदल कर उसको सब कुछ समर्पण कर देने की प्रेरणा देती है।

किन्तु

जहाँ भुवन इतना स्वपीड़ावादी (मोशेचिष्ट) है वहीं उसमें जीवन और जीवन की वास्तविकता के प्रति आदर भी है वस्तुतः—

"भुवन का दुःख—पूजा का एक सिद्धान्त है। पीड़ा से दृष्टि मिलती है। इसलिए आत्म-पीड़न ही आत्म-दर्शन का माध्यम है।"

यदि इस सिद्धान्त को गलत माना जाय तो फिर बौद्ध दर्शन के आत्मपीड़न और आत्मा-नुभूति के सिद्धान्त को इतिहास में क्या स्थान मिलेगा? क्या कुछ नहीं?

भुवन जिस वर्ग विशेष का व्यक्ति है और जिसके प्रतिनिधि रूप में उपन्यास का नायक बन कर आया है उस रूप में उसने अपने दायित्व को एक सफल रूप में निर्वाह किया है। जिस एकांगी जीवन का चित्र अज्ञेय जी ने उपन्यास में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है उसमें भुवन को सफलता मिली है—वस्तुतः यह कहना कदापि असंगत न होगा कि उस वातावरण के अनुकूल उपयुक्त पात्र भुवन ही का 'टाईप' था, दूसरा नहीं।

फिर जो इधर उधर की बातों के अनुसार इस मत को मानते है कि यह भी होना चाहिए था वह भी होना चाहिए था, वह इस बात को भूल जाते हैं कि उपन्यास का वस्तु-विधान ही ऐसा है कि उसमें यह वह की संभावना असंगत होती।

भुवन का अहम् उसके व्यक्तित्व का मुख्य अंश है क्योंकि न तो वह थोथे नारों के पीछे ही दौड़ता है और न लेखक के हाथ की कठपुतली ही बन पाता है—वह स्वयम् चेतन है और अपनी परिस्थितियों के आधार पर अपना निर्माण करता है। वह न तो किसी कल्पित आदर्श से आतंकित होकर अपनी आँखें ही बन्द कर लेता है और न इतना जड़ ही है कि घटनाओं के सामने चट्टान् सा पड़ा रहे। उसकी विशेषता है कि न तो वह घटनाओं को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है और न उनमें बह ही जाता है। वह स्थिति की महत्ता को स्वीकार करता है, बस।

यह भी एक प्रकार है। इससे अलग सोचना या उसकी मनःस्थिति की अवहेलना कर के सम्भावित कल्पना करना उपन्यास के साथ अन्याय करना होगा।

भुवन की पीड़ा मे जय-पराजय, भाव-कुभाव का प्रदर्शन नही है वरन् उसके अन्तर मे उसके अर्द्ध चेतन में संस्कार और बौद्धिक तर्क-संगत का संघर्ष है और वह इसी से मर्माहत है।

स्वाभाविकता इसीमें है कि परिस्थितियों का अध्ययन कर के उनके साथ बढ़ने की चेष्टा करे। भुवन में बेकार का आतंक-जन्य स्वभाव नहीं है।

भुवन अपने समय के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने दृष्टिकोण के सामने किसी भी घटना को महत्त्व नहीं देता। यह भी एक गुण है जो सर्वथा निन्दनीय नही कहा जा सकता।

रेखा

का संक्षिप्त जीवन और 'नदी के द्वीप' की पृष्ठभूमि की कहानी इस प्रकार है—"रेखा का विवाह आठ वर्ष पहले हुआ था पर विवाह के एक दो वर्ष बाद ही पति पत्नी अलग हो गये थे . .कोई कहते है विवाह के पहले रेखा का किसी से प्रेम था पर उससे विवाह हो ही नही सकता था; उसने बाद में दूसरे से विवाह कर लिया था तो मर्माहत रेखा ने—उसके माता पिता ने जो वर ठीक किया उसीसे—विवाह कर लिया. . .कोई कहते हैं पति की ही आदतें खराब थी और वह पत्नी के प्रति अत्यन्त उदासीन था—मित्रों को लाकर घर छोड़ जाया करता था और स्वयम् न जाने कहाँ-कहाँ जा रहता था. . .तीन चार वर्ष हुए पति एक विदेशी रबर कम्पनी की नौकरी स्वीकार कर के मलाया चला गया है. .सुना जाता है कि वहाँ उसने किसी योरोपियन अथवा मलायावासी स्त्री से विवाह कर लिया है और रेखा का स्थान तो उसके जीवन में केवल परम्परागत हिन्दू नारी के रूप में टूट ही नही सकता और इसी आधार को अधिकार मान कर वह मलाया से लौटने पर रेखा पर मुकदमा भी चलाता है।

इस वातावरण के फलस्वरूप रेखा का चरित्र इस प्रकार विकसित होता है—

(अ) रेखा—"एक स्वाधीन व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व प्रतिभा की सहज तेज से नही, दुःख की आँच से निखरा है। दुःख तोडता भी है पर जब नहीं तोड़ता या तोड़ पाता तब व्यक्ति को मुक्त करता है" (पृष्ठ ११४)

(ब) "रेखा उतनी भोली नहीं है उसमें एक बुनियादी दृढ़ता है. . . निसन्देह असीम सहिष्णुता उसमें है . . . व्यथा पाने की असीम अन्तः सामर्थ्य . . . लेकिन वह इसीलिए कि आनन्द की असीम क्षमता उसमें है . . . वह मानव की सम्भावनाओं की ट्रेजडी है।

(स) "रेखा क्षण ही के प्रति समर्पित होने की बात करती है। क्षण ही को विराट् मानती है . . . रेखा ही कहती है मैं कुछ नहीं हूँ . . . जीवन के प्रवाह में एक अणु हूँ—पर कितना अहम् है उसमें" . . . (पृष्ठ ५०)

(द) "मेरे आस पास दुर्भाग्य का एक मंडल जो रहता है . . . उसके भीतर किसी को नहीं आने देती कि छूत न लग जाय" (पृष्ठ ५४)

(ध) "रेखा के जीवन के दो पहलू हैं—"एक चरित्रवान, मुक्त, प्रकृत; एक सभ्य और चरित्रहीन" (पृष्ठ १३६)

(न) " . . . समर्थ प्रकृत चरित्र सभ्यता को पोसे हुए पालतू चरित्र के नीचे दब जाता है—व्यक्ति चरित्रहीन हो जाता है। तब वह सृजन नहीं करता, अलंकरण करता है। नये बीज की दुर्निवार शक्ति से जमीन छोड़ कर नये अंकुर नहीं फेंकता, पल्लवित नहीं होता, झरे फूल चुनता है, मालाएँ गूथता है। मालाओं से मूर्तियाँ सजाता है—जब मूर्ति पर मालाएँ सूख जाती हैं तब हमें ध्यान होता है कि सभ्यता तो मर चली . . ." (पृष्ठ १३८)

(य) "मैं क्षण से क्षण तक जीवित रहती हूँ न, इसलिए कुछ भी अपनी छाप मुझ पर नही छोड जाती, मैं जैसे हर क्षण अपने को पुनः जिला लेती हूँ—" (पृष्ठ १४८)

(र) "मुझे किसी बात का पछतावा नहीं है, और इससे भी दस-गुनी बुरी तरह टूट जाऊँ तब भी तुम्हारे साथ के एक क्षण को, हमारी सारी अनुभूति के एक स्पन्दन को भी छोड़ देने को मै राजी नहीं हूँ . . " (पृष्ठ ३१०)

(ल) "मैने भविष्य मानना ही छोड दिया है . . . भविष्य ही नहीं, एक विकासमान वर्तमान . . ." (पृष्ठ ५८)

रेखा वर्तमान समाज की अनिश्चित परम्पराओं एवम् शिथिल शक्तियों की देन है। उसकी प्रतिक्रिया है जो विद्रोह की आग को अपने में समेट चुकी है और व्यापक मान्यताओं का मज़ाक उड़ाना चाहती है किन्तु नारीसुलभ संस्कार से वह मुक्ति नहीं पाती—अपने पति को तलाक देती हैं, भुवन उससे विवाह नहीं करता किन्तु फिर उसे उसी बन्धन में आना पड़ता है और वह डाक्टर रमेश से विवाह कर लेती है—

रेखा में बहने की क्षमता है और अपने अनिश्चित जीवन के व्यंग को, जो उसे पहाड़ से है, केवल क्षणवाद के थोथे सिद्धान्त से सन्तुष्ट कर के समस्त कुंठा को उड़ा देना चाहती है। किन्तु संस्कारों का विद्रोह और नारि स्वभावगत होने के नाते बिना पुरुष के उसका रहना असंभव है।

रेखा ने अपने जीवन ही में अपने क्षणवाद (इक्ज़िस्टेन्शलिज़्म) के दार्शनिक सिद्धान्त की हार देख ली . . अन्त में विवाह के परम्परागत विधान को स्वीकार करना ही क्षण-वाद की पराजय है।

रेखा का बौद्धिक स्तर निश्चय ही भुवन से नीचा है क्योंकि भुवन में वस्तुस्थिति को विश्लेषणात्मक ढंग से देखने की क्षमता है किन्तु रेखा में सहज नारी स्वभाव के कारण वह पटुता नहीं है। रेखा में गौरा का सा निश्चय नहीं है इसलिए सजीव होते हुए वह निम्न स्तर की स्त्री है।

रेखा की पलायनवादी प्रकृति ही उसे मुक्त बनाये है। उपन्यासकार ने उसके चरित्र में विरोधाभास दिखाया है---यदि वह इतनी सबल और सशक्त थी जैसा कि प्रस्तुत किया गया है तो उसे अपने क्षण विशेष के सुख के प्रतीक 'अजात शिशु' की हत्या करने की क्या आवश्यकता थी ? यदि भुवन उसकी अवहेलना भी करता तो उस भार को स्वयम् वहन करने की क्षमता उसमें होनी चाहिए थी। फिर उसमे 'भ्रूण हत्या' की कायरता क्यो आई ? रेखा संघर्षों से घबराती है। केवल दृढ धर्मी होने के नाते वह संघर्षों को ओढ भले ले किन्तु उनको स्वाभाविक ढंग से झेल सकने की क्षमता उसमें नही है और---

गौरा

इसके विपरीत अधिक गभीर और संतुलित है। उसमें जीवन के किसी एक आधार पर टिकने की क्षमता है। वह भुवन को प्रेम करती है किन्तु उस प्रेम में शका, आतंक, अधीरता और असतुलन नहीं है---वह समय और अवसर के लिए साधना करती है---

(अ) गौरा का भुवन के प्रति प्रेम सहज और स्वाभाविक है। भावना से ओतप्रोत गौरा कहती है---

"सचमुच मेरे जीवन का सब मे बड़ा इष्ट यही है कि तुम्हें सुखी देख सकूं---तुम्हारे प्राण ठीक कर सकूं। मेरे स्नेह-शिशु, मैं तुम्हारे ही लिए जीती हूँ क्योंकि तुममे जीती हूँ।" (पृष्ठ ४००)

(ब) रेखा की भांति गौरा का चरित्र नहीं है। रेखा में अधिक भावुकता है लेकिन अनियंत्रित है, विक्षिप्त है, गौरा में वह प्रेम और भावना संतुलित है, शुद्ध है---उसमें विकार नही है---

(स) गौरा में भुवन के प्रति सख्य-भाव है, साथ ही गौरा का नारित्व अधिक विकसित एवम् स्वस्थ है। गौरा भुवन को प्रेम करती है किन्तु उसमें आत्म-साधना की झलक मिलती है। रेखा में इसके विपरीत एक उतावलापन है---शायद उसके अनियंत्रित और असंयमित विक्षिप्त और उपेक्षित जीवन के कारण।

(द) गौरा मे रेखा के समान तीव्र बौद्धिक तर्क वितर्क नही है। उसके पास जो उसकी निजी भावना है उसके ही आधार पर वह अपने तर्क और ज्ञान को भी आधारित रखती है।

(ध) गौरा को किसी भी बात की अधिक चिन्ता नही है---वह सब को अच्छा समझ सकती है---सब को एक साधारण सीमा में बाँध कर छोड़ दे सकती है किन्तु वह एक प्रथक वृत्त की भी रचना करती है। जहाँ भुवन को लेकर एकान्त में रहना चाहती है---वहाँ कोई नहीं पहुँच सकता---स्वयम् भुवन की छाया भी नहीं पहुँच सकती और शायद इसीलिए वह भुवन को पा भी लेगी और रेखा भुवन को पाकर भी उसे सँभाल नहीं सकी।

गौरा में हमें कुछ आदर्शवादी चिन्तन की झलक मिलती है लेकिन लेखक की बँधी सीमाओं में उसका अधिक विकास नहीं हो पाया है। वैसे गौरा सजीव और सचेत है, उसमें किसी भ्रम का विष नहीं है—स्वयम् भुवन के कर्मों के प्रति भी नहीं—

चन्द्रमाधव

(अ) "एक तरह का नशेबाज है और जीवन की महत्त्वपूर्ण चीजों को नहीं पहचान पाता...चन्द्रमाधव में सनसनी खेज़ी है—असल में उसने जीवन खोजा है—प्लवनकारी जीवन" (पृष्ठ ४८)

(ब) चन्द्रमाधव लालची है, उसमें स्वार्थलम्पटता है। वह अराजकता का पोषक है इसीलिए वह कभी भी स्थिर नहीं है। वह केवल भागना चाहता है और भागने के बाद मुक्त रहना चाहता है—वस्तुतः चन्द्रमाधव कृत्रिम कोटि का व्यक्ति है—

(स) "..और फिर भविष्य की बात में क्या सोचूँ?—मैं तो ऐसा फ़ेटलिस्ट हो गया हूँ कि सोचता हूँ कि मेरा भविष्य और कोई बना दे तो बना दे—मेरे बस का नहीं" (पृष्ठ ५८)

(द) समाज के प्रति चन्द्रमाधव कहता है—"हमारे जीवन को, हमारे वर्ग-स्वार्थों को, वर्ग से मिलने वाली सुविधाओं को बनाये रखने के लिए रचा गया भारी प्रपंच, और यह देख लेने के बाद उसी में फँसे रहना कैसे सम्भव है? यह दूसरा कारण है कि जिसने मुझे औरों से अलग कर दिया है—अपने वर्ग से उच्छिन्न हो गया हूँ।" (पृष्ठ ३३७)

(ध) "दाम्पत्य जीवन के बारे में वह सोचता है—"स्त्री-पुरुष का मिलन सब से बड़ा सुख नहीं हो सकता क्योंकि उसमें प्रत्येक को साझीदार की, दूसरे की जरूरत है, वह परापेक्ष सुख है—सच्चा सुख निरपेक्ष और स्वतः सम्पूर्ण होना चाहिए।" (पृष्ठ ३३९)

चन्द्रमाधव उदण्डता का प्रतीक है—वासना प्रिय और उच्छृंखल...उसका कोई भी तर्क वैज्ञानिक नहीं है।

चन्द्रमाधव निराशावादी, भाग्यवादी और पलायनवादी प्रवृत्तियों का विचित्र समन्वय है।

चन्द्रमाधव दायित्वहीन है। उसके प्रति कोई सहानुभूति भी नहीं उठती क्योंकि उसका अपने ऊपर भी नियंत्रण नहीं है।

शिल्प और शैली

उपन्यास के प्रारम्भ में ही उसके अन्तराल के सूत्ररूप में लेखक ने दो सूत्र प्रस्तुत किये हैं—एक तो शैली के निराशावाद को व्यक्त करता है; दूसरा अज्ञेय के पीड़ावाद को।

'मिजेरी, अथवा दुख के सागर में हरे-भरे द्वीप होंगे जो जीवन की गति संचालित करेंगे की कल्पना आशावादी दिखलाई पड़ती है किन्तु दुःख का कुहासा इतना गहरा है कि उसमें हरे-भरे द्वीप भी दिखलाई पड़ेंगे इसमें संदेह होना स्वाभाविक है। दुःख की तीव्रता में दुःख शून्य में नहीं मिलता वरन् दुःखमय बना कर छोड़ देता है। हरे-भरे द्वीप भी ज्वालामुखी से लगेंगे—इसलिए कला और साहित्य में केवल मंगल के लिए ही अमंगल का आश्रय लेना अधिक उचित होगा। फिर नदी के

द्वीप के सभी पात्र दुःख से न तो स्वयम् को मुक्त कर पाते हैं और न दूसरों को—फिर यह कहना कि दुःख भीजता है और सब को मुक्त कर देता है—व्यर्थ का आधार मालूम होता है—

दूसरी बात जो शिल्प और शैली के बारे में कहना आवश्यक है वह यह है कि

(१) यद्यपि पात्रानुकूल कथा-विधान का निर्माण किया गया है फिर भी उसमें पात्रों का विश्लेषणात्मक गठन नहीं हो पाया है—प्रत्येक पात्र बिखरा हुआ है इसलिए यह विभाजन अधिक सफल नहीं हुआ है।

(२) अन्तराल की शैली प्रशंसनीय है और इसके द्वारा लेखक ने पात्रों के आत्मनिरीक्षण का अच्छा तरीका निकाला है किन्तु प्रस्तुत पात्रों में से अधिकांश की कोई आवश्यकता नहीं थी।

(३) कथा-वस्तु आवश्यकता से अधिक सीमित और संकुचित है, इसकी रचना बढ़ाई जा सकती है और उसका व्यापक निरूपण किया जा सकता था।

(४) अश्लील वर्णन से उपन्यास में थोड़ी कृत्रिमता आ गई है क्योंकि कला संकेतात्मक व्यंजना से अधिक प्रभावित करती है, नग्न वर्णन से नहीं। अनावरण यथार्थवाद की भी एक मर्यादा है!

(५) भावनाओं की तीव्रानुभूति व्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं के काव्यांश उद्धृत किये गये हैं; उपन्यास-कला में यह आवश्यक नही है।

'नदी के द्वीप' की असफलताएँ

रेखा 'नदी के द्वीप' प्रतीक की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहती है—

"हमी द्वीप हैं; मानवता के सागर में व्यक्तित्व के छोटे-छोटे द्वीप; और प्रत्येक क्षण एक द्वीप है—खासकर व्यक्ति और व्यक्ति के सम्पर्क का, काटेक्ट का प्रत्येक क्षण—अपरिचय के सागर मे एक छोटा किन्तु कितना मूल्यवान् द्वीप। (पृष्ठ १४२)

इस मान्यता में एक दोष है जिस पर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है और वह यह कि यदि समस्त सागर द्वीपमय हो जायगा तो प्रवाह रुक जायगा इसलिए मानवता के सरस प्रवाह के लिए व्यक्ति के अहम् को मर्यादित रखना पड़ेगा।

प्रत्येक क्षण अपने मे कभी भी पूर्ण नही है, वह बीते हुए क्षण से जन्मता है और आने वाले क्षण को जन्म देता है और इस प्रकार उसका सम्बन्ध बीते हुए और आनेवाले क्षण से अनिवार्य है इसलिए 'नदी के द्वीप' का यह प्रतीक गलत है।

समस्त उपन्यास द्वीप, सागर, और व्यक्ति और अहम् को लेकर चलता है किन्तु प्रस्तुत पात्रों में से कोई भी विशेष प्रभाव पाठक पर नहीं डालता क्योंकि रेखा अपने जीवन-दर्शन का पराजय स्वीकार कर लेती है; भुवन भी गौरा के बन्धन को एक प्रकार से मान ही लेता है। भुवन का व्यवहार-हीन व्यक्तित्व गौरा के साथ विवाह करने के लिए झुकता है और गौरा जिसको संस्कार-युक्त सशक्ति नारी पात्र के रूप मौन साधक की प्रेरणा मिली है वह भी मुखर हो कर भुवन से विवाह की बातचीत करती है; फिर विशाल मानवता के सागर में ये द्वीप कहाँ दृढ़ रह पाते हैं?—

वर्णन शैली, भाषा और भाव-व्यंजना में अज्ञेय जी ने जो प्रतिभा और चमत्कार पैदा किया है वह प्रशंसनीय है, उसमें अपनी बात को प्रस्तुत करने की क्षमता है और अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की सबल शक्ति भी है। इस दृष्टिकोण से कि जितना भी लेखक ने वर्णन करना चाहा है उतने का निर्वाह बड़े ही प्रौढ़ शिल्प द्वारा किया है—उपन्यास पूर्णतया सफल सिद्ध हुआ है। वैसे मतभेद के भी स्थान है और मतभेद होना भी उपन्यास और लेखक दोनों की सफलता का द्योतक है।

अंत में एक बात कह देना आवश्यक है और वह यह कि जो लोग 'नदी के द्वीप' को पढ़ कर यह सोचते हैं कि उसमें किसी विशेष धार्मिक अथवा दार्शनिक तत्त्व मिलेंगे अथवा एक व्यापक 'जनान्दोलन' की अनुभूति मिलेगी वह गलती करते हैं क्योंकि 'नदी के द्वीप' के प्रायः सभी पात्र और स्वयम् कथा-वस्तु का संचयन ऐसी परिस्थितियों में किया गया है कि उसमें इस वातावरण के प्रति कोई विशेष स्थान देना असंभव लगता है। वैसे युद्ध और युद्ध के भयंकर परिणामों और मनुष्य की बर्बरता से पीड़ित जनता की बात भी उपन्यास में है किन्तु वह उतनी ही मात्रा में है जितनी कि चाहिए अथवा जितनी उपन्यास के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत विचार विनमय के आधार पर 'नदी के द्वीप' को सिवा एक सफल उपन्यास के और कुछ नहीं कहा जा सकता।

सूरज का सातवाँ घोड़ा

धर्मवीर भारती का 'एक नवीन कथा-प्रयोग' है। इस लघु उपन्यास में दो कथा-वृत्त एक केन्द्रविन्दु से विकसित होकर एक दूसरे को काटते हुए अपने में पूर्ण हो जाते हैं किन्तु एक तीसरा कथा-वृत्त भी है जिसका केन्द्रविन्दु 'मैं' है और जो इन वृत्तों से पृथक् हट कर तटस्थता का निष्कर्ष एवम् कथा-वस्तु का निरूपण करता है। समस्त रचना-विधान इस प्रकार है—

प्रथम कथा-वृत्त का केन्द्र 'माणिक मुल्ला है, जमुना, लिली और तन्ना केन्द्र के उपग्रह।

दूसरे कथा-वृत्त का केन्द्र माणिक मुल्ला है, सती, महेसर और चमनसिंह केन्द्र के उपग्रह।

तीसरा कथा-वृत्त 'मैं' की है जिसके एक ओर मार्क्सवादी सिद्धान्तों का व्यंगपूर्ण चित्रण है और दूसरी ओर व्यक्तिवादी कला-पक्ष। यह वृत्त गौण है।

कथा के प्रथम वृत्त में 'जमुना' है जो परिस्थितियों से समन्वय करती चलती है। मध्यवर्ग की युवती विवाह न होनेपर 'माणिक मुल्ला' जैसे भोंदू को अपने आलिंगन वक्ष में कस कर अपनी वासना तृषा को शान्त कर लेती थी किन्तु विवाह के लिए अपने सम्भावित पति को भी ललचाई दृष्टि से देखती थी, तन्ना से विवाह न होने पर उसका क्रम माणिक मुल्ला के साथ चलता जाता है किन्तु एक बूढ़े पति से विवाह कर के भी वह प्रसन्न रह जाती है। पुत्र के लिए पूजा-पाठ करती है और पुत्र उत्पन्न होने के बाद जब पति मर जाता है तो वह अपने तांगे वाले को रिक्त स्थान

का आधिपत्य सौंप देती है और इस तरह उसके जीवन में चूंकि कोई आदर्श नहीं है इसलिए वह सदैव सुखी रह सकती है, इसकी झलक उपन्यास में अव्यक्त ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

किन्तु

दूसरी ओर तन्ना जैसा आदर्शवादी व्यक्ति है जो आदर्शों के बोझ में दबा मृत्यु को अपना लेता है। उसे अनेक दुःख होते हैं, माता मर जाती है, पिता एक रखेल रख लेता है; वह स्त्री तन्ना और उसके सब भाइयों और बहनों को पीड़ा पहुँचाती है और इसी संघर्ष में पढ़ना-लिखना छोड़ कर वह नौकरी कर लेता है--पिता द्वारा आश्रित रखेल घर से निकल जाती है। तन्ना का विवाह एक धनी लड़की से हो जाता है जिसका नाम है लिली लेकिन आर्थिक संकटों और तन्ना की ईमानदारी के कारण कोई व्यवस्था ठीक-ठीक नहीं चल पाती--तन्ना की नौकरी छूट जाती है। यूनियन की कोशिश से उसे फिर नौकरी मिलती है किन्तु अब तक उसे टी० बी० हो चुकी होती है और लिली उसे छोड़ कर चली जा चुकती है और तन्ना रेल की एक दुर्घटना में दोनों पैर कट जाने से मर जाता है--

और

माणिक मुल्ला यह बताते हैं कि लिली से भी उनका पूर्व संबंध था और वह इतने बड़े कायर व्यक्ति थे कि अपनी आदर्शवादी सिद्धान्त के आड़ में लिली को प्रेम तो करते थे किन्तु उनमें यह साहस नहीं था कि उससे विवाह कर सकते और लिली भी कुछ इस प्रकार की लड़की थी कि यह निश्चित हो जाने पर कि उसका विवाह तन्ना ही से होगा वह माणिक मुल्ला को भूल जाती है और इतना सारा उपन्यास एक एक कर के घटित होता जाता है किन्तु माणिक मुल्ला जैसे के तैसे ही रह जाते है और अब न तो माणिक मुल्ला एक प्रेमी हैं और न एक आदर्शवादी, वह केवल एक 'कथा कहने वाले हैं'--जो कथा कहते हैं केवल कथा के लिए नहीं वरन् मनमाने निष्कर्ष निकालने के लिए, किन्तु इस अन्त तक पहुँचने के पहले लिली के बाद ही वह

अचानक

एक रोज एक लड़की से मिलते हैं जिसे एक फौजी सिपाही ने बुलिचिस्तान में आज से सोलह सत्रह वर्ष पूर्व पकड़ा था और जो अब नगर में एक साबुन की दुकान द्वारा अपनी जीविका चलाता है और जिसकी वासना इतनी तीव्र है कि अपनी गोद में खिलाई हुई लड़की को बड़ा होकर काम इच्छा की दृष्टि से देखता है किन्तु सत्ती माणिक मुल्ला को चाहती है और तन्ना का बूढ़ा पोपला पिता 'महेसर दलाल' भी उसे फासना चाहता है किन्तु वह माणिक मुल्ला की सहायता चाहती है और माणिक मुल्ला हैं कि मारे डर के उसको पकड़वा देता है और कहानी का अंत यह होता है कि चमन सिंह और सत्ती को माणिक मुल्ला उसी नगर में एक गाड़ी पर बैठे हुए भीख माँगते देखते हैं--जो अस्वाभाविक, कृत्रिम और अवैज्ञानिक है।

तो

सारे उपन्यास में कोई भी पात्र असाधारण नहीं हैं। एक दृष्टिकोण से देखा जाय तो शायद सभी निम्न कोटि के हैं। जमुना, लिली और सत्ती तीनों ही निम्न और पतित "प्रकार" की स्त्रियाँ हैं। जमुना अवसरवादी और समझौता-पसन्द स्त्री है। उसके सामने न तो जीवन का कोई आदर्श है और न उसकी अपनी कोई इच्छा। वह प्रत्येक परिस्थिति से समझौता ही नहीं करती वरन् वह उसका उपयोग करती है। जमुना में संघर्ष करने एवम् आस्थाओं के प्रति टिकने की क्षमता नही है। जहाँ यह किसी अन्य पात्र मे एक गुण की बात होती वही जमुना के चरित्र में वह एक दोष बन जाता है, क्योंकि जमुना का समस्त जीवन वासना से ओत-प्रोत और अर्थ-प्रधान है।

लिली भी जमुना का प्रतिरूप नहीं तो उसी वर्ग की है—उसमें भी संघर्ष करने की क्षमता नहीं है, केवल परिस्थितियों से भाग जाने की क्षमता है। अन्तर केवल इतना है, कि जमुना परिस्थितियों को ओढ़ लेती है और फिर उनके अनुसार अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कदम उठाती है, लिली परिस्थितियों से भागती है और उनको भुला देने की चेष्टा करती है। जमुना परिस्थिति-वृत्त के बाहर वाले व्यक्तियों को एकदम भुला नही देती किन्तु लिली सब कुछ भुला देती है।

किन्तु

सत्ती में संघर्ष की थोड़ी बहुत क्षमता है, वह अपने पास चाकू रखती है और वह जिस चाकू को महेसर और चमनसिंह की हत्या के लिए प्रयोग में ला सकती है उसीसे माणिक मुल्ला की भी हत्या कर सकती है किन्तु वह नारीसुलभ दुर्बलता के कारण पराजित हो जाती है।

और

माणिक मुल्ला केवल एक कठपुतली है जो स्वयम् कुछ भी चेतना नहीं रखते, चाहे जमुना उन्हें नमकीन पुआ खिला कर अपनी मनमानी कर ले अथवा लिली अपने अधरों को माणिक मुल्ला के अधरों पर रख दे किन्तु माणिक मुल्ला में न तो उसके लिए कोई 'सोज़' है न वेदना। दुर्भाग्य यह है कि वह कवि भी हैं, कहानी लिखते हैं और कहते भी हैं—शायद इसीलिए माणिक मुल्ला नपुंसक भी हैं, कायर भी हैं और व्यक्तित्वहीन हैं—कौन जाने वह मोहल्ले के छोटे बच्चों को कहानियाँ क्यों सुनाते हैं। क्या वह आनेवाली सन्तान में—

(१) विश्वासहीनता और आत्मनिष्ठा का अभाव भरना चाहते हैं—क्या वह दर्द जो वह अपनी कविताओं में व्यक्त करना चाहते हैं अथवा करते हैं केवल इसलिए है, कि वह किसी भी युवक को प्रेम का औचित्य न जता सके?

(२) क्या माणिक मुल्ला से एक प्रश्न किया जा सकता है और वह वह कि 'उनकी' धारणा नारी जगत् के बारे में क्या है? चाहे माणिक मुल्ला इसे मानें या न मानें, उनकी कथा-शैली से यह पता चलता है कि वह स्त्रियों से घृणा करते हैं क्योंकि जमुना, लिली, सत्ती और 'बूआ'

के चरित्र-चित्रण में वह केवल वही पक्ष दिखाना चाहते है जो बुरा है—क्या स्त्रियों में कोई अच्छाई नहीं हो सकती ?

(३) माणिक मुल्ला की शैली 'कल्पना' को आतंकित करनेवाली शैली है। तन्ना की लँगड़ी बहन का चित्रण केवल एक नाटकीय तनाव पैदा करने के लिए जोड़ा गया है। अन्तिम दृश्य की मार-पीट भी ऐसी ही है। वस्तुतः माणिक मुल्ला पर पीड़ावादी (सैडिस्ट) मनोवृत्ति की गहरी छाप है। वह स्वप्न में भी यही सब देखते हैं और यदि वह बुरा न मानें तो मैं कहूँगा कि वह कथा के तीसरे वृत्त के केन्द्रविन्दु "मैं" के रंग में रँगे हुए हैं।

(४) माणिक मुल्ला के जीवन का न तो कोई लक्ष्य है न आदर्श। वह केवल एक अभिनेता हैं इसलिए जो किसी आदर्श पर टिकता है वह उसका उपहास करते हैं। उनकी शैली में आदर्श के प्रति व्यंग भरा पड़ा है यहाँ तक कि तन्ना की मृत्यु पर भी उन्हें शोक नही होता। अपने भीतर की उमस को दबाते हुए वह कुछ भी नही कहते। 'मैं' चाहे जो दलील पेश करे, किन्तु सत्य यह है कि माणिक मुल्ला आदर्शहीन व्यक्ति हैं।

(५) उपन्यास के 'मैं' को चाहिए कि वह माणिक मुल्ला की शैली को न अपनावे क्योंकि किसी एक व्यक्ति को एक रंग में नही रँगना चाहिए। 'मैं' चिन्तनशील युवक है, उसे कहानी और कथा की शैली का पूर्ण ज्ञान है इसलिए वह माणिक मुल्ला से और सब कुछ सीखले किन्तु तीन चीजों से बचे।

(अ) अपने दृष्टिकोण से पात्रों को न प्रस्तुत कर के उनकी स्वाभाविकता पर ध्यान दे।

(ब) माणिक मुल्ला जैसे पलायनवादी व्यक्ति के सम्पर्क में केवल उनका अध्ययन करे किन्तु विशाल मानव-समाज को उनके माध्यम से न देखे।

(स) माणिक मुल्ला से नवयुवकों को बचाने की कोशिश करे क्योंकि माणिक मुल्ला में दम नही है, वह बिना कमर के व्यक्ति हैं।

मगर

उपन्यास की शैली गठित और सुन्दर है; उसमें कहानी के प्रति उत्सुकता बनी रहती है, कथानक के वृत्तों में केन्द्रानुभूति, स्वाभाविक, गति और चरमोत्कर्ष बराबर बना रहता है, वर्णन-शैली बड़ी ही रोचक और सुन्दर है; घटनाओं का विश्लेषण, पात्रों का आत्मदर्शन और निष्कर्ष अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। जहाँ कहीं 'मैं' कवि बन गया है—जैसे लिली के रोमांस के वर्णन में—अथवा तन्ना के कटे पैर के रूपक एवम् प्रतीक में—वहाँ उसकी वाणी में हृदय को हिला देने वाली क्षमता भी है।

"मैं" की शैली में कहीं-कहीं खुर्दरापन है और कहीं-कही वह आवश्यकता से ज्यादा संक्षिप्त एवम् कहीं-कही अत्यधिक भावुक बन गया है। 'मैं' मे विवेचन-शक्ति है किन्तु विवेचन में संतुलन नहीं है।

"मैं" में एक दोष है और वह यह कि कहीं कहीं पर अनावश्यक और अप्रासंगिक रूप में उसने किसी विशेष विचार-धारा की ऐसी निन्दा की है जो उपन्यास से कोई सम्बन्ध नहीं रखता. जैसे 'मार्क्सवाद' पर कटाक्ष अथवा 'आदर्शवाद' पर व्यंग अथवा 'नारीसुलभ भावना' के प्रति उदासीनता इत्यादि इत्यादि . . . . . .

"मैं" की वर्णन-शैली में ऐसा लगता है जैसे वह पात्रों पर सन्देह करता है, जैसे कहीं-कहीं उसने जमुना और सत्ती के चरित्र-चित्रण में किया है। अनध्याय में 'मैं' ने सब के चरित्र का विश्लेषण किसी न किसी रूप में किया है किन्तु माणिक मुल्ला के प्रति उसका इतना मोह है—कि कहीं भी उनका संतुलित विश्लेषण उसने नहीं होने दिया है।

अंत में श्री अज्ञेय के शब्दों में यह मानना ही पड़ेगा कि—

"सूरज का सातवाँ घोड़ा एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है। वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचन है; और जैसे उस समाज की अन्तः शक्तियाँ परस्पर सम्बद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर सम्भूत हैं वैसे ही उसकी कहानियाँ भी।"

शिल्प के दृष्टिकोण से सूरज का सातवाँ घोड़ा "हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता रहे"—यह कामना और उपन्यास का 'मैं' 'हम' में परिवर्तित हो जाय, बस।

परन्तु

यह प्रभाकर माचवे के 'प्रयोगवादी' एवम् 'प्रगतिवादी' विचारों को प्रस्तुत करने वाला एक असफल उपन्यास है। 'प्रयोगवादी' इसलिए कि उसमें एक नई शिल्प की योजना की गयी है जो सर्वथा असफल सिद्ध हुई है, 'प्रगतिवादी' इसलिए कि उसमें मनमाने ढंग से वर्ग-संघर्ष एवम् चरित्र-चित्रण की शैली में मार्क्सवादी सिद्धान्तों को ठूंसा गया है और अनावश्यक रूप से मध्यम वर्ग की आर्थिक पृष्ठभूमि-का आधार लेकर कथा-वस्तु का निर्माण किया गया है पात्रों को स्वतः विकसित होने का अवसर दिये बिना ही मनमाने ढंग से उन्हें प्रस्तुत करने की चेष्टा की गय. है। उपन्यास को पढ़ने के बाद यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि—

(१) पात्रों का मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक परिचय न देकर लेखक ने कथा का विधान और लक्ष्य पहले से निश्चित कर लिया है और फिर उस फ्रेम में—बिना स्वाभाविकता और औचित्य का ध्यान दिये—पात्रो को ठूंसने की चेष्टा की है।

(२) उपन्यास के सभी पात्र इतने चेतना-विहीन हैं कि "पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के अविकसित चरण में बंधे" होते हुए भी उनमें न तो इतनी क्षमता है कि उसे तोड़ सकें और न यही है कि उसका विवेचन या क्रियाशील नियोजन कर सकें। वे सब के सब आत्म-समर्पण करते हैं और निष्प्राण प्राणियों की भाँति टकरा-टकरा कर फिर वहीं आ जाते हैं जहाँ से उठते हैं। उनमें मानसिक रूप में भी स्वस्थ चिन्तन नहीं है।

(३) प्रायः सभी पात्र किशोर (एडोलसेंट) हैं । इसलिए वह बहकते बहुत हैं करते कुछ नही, इसलिए सारा का सारा उपन्यास एक गल्प है, जिसमें न तो घटना है, न कथानक है, न कोई प्रभावित करनेवाला साधारण अथवा असाधारण चरित्र है और न उसमें कोई विशेष जीवन-दर्शन है । ऐसा लगता है विभिन्न कहानियों को एक में जोड़ दिया गया है, किन्तु जोड़ने में भी कला-विहीनता है, क्योंकि जोड़ स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं—जैसे पुरानी मिरजई पर नये पेबन्द।

(४) उपन्यास मे अनाप-शनाप बातें बहुत हैं, जैसे—तिब्बत में मृगी कैसे पकड़ी जाती है, रूस में कैसे पकड़ी जाती है, अफ्रीका में कैसे पकड़ी जाती है—और यदि मृगी पकड़ने को स्त्री के प्रणय का (प्रभाकर माचवे जी के शब्दों मे 'फँसाने का') प्रतीक मान लें तो भी लेखक की विद्वता का और उनके 'शिकारी' होने का प्रमाण तो मिल सकता है किन्तु लघु-उपन्यास के साथ उसकी संगति नही बैठाई जा सकती इत्यादि......

(५) सारे उपन्यास में कही भी शिल्प-निपुणता नही मिलती, सिवा इसके कि बहुत ही भोंडे और अनावश्यक ढंग से प्रत्येक सर्ग के अन्त में "परन्तु" और फिर डॉट ..डॉट...डॉट यो ही जोड़ दिये गये हैं। वस्तुतः सारा उपन्यास किसी चूरन बेचनेवाले के थाल के समान है जिसमें खट्टा-मिट्ठा, झड़बेरी और त्रिफला इत्यादि का स्वाद भरा पड़ा है किन्तु बेचनेवाले को स्वयम् टी० बी० है, दमा है, बदहजमी है और न जाने कौन-कौन से रोग है।

अस्तु

उपन्यास की भूमिका मे लेखक ने चार बातें प्रस्तुत की ह—

(१) आज मानव एक नकाबपोश बन गया है। समाज में वह एक मुखौरा पहने चलता है—व्यक्तिगत उसके हेतु विपरीत है ।

(२) मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों के विरोध मे आदर्शवाद की नकारात्मक शब्दावली का मानसिक संघर्ष चलता है।

(३) भौतिकवादी युग की प्रगति के साथ-साथ यह नकारात्मक आदर्श-मूल्य पराजित होते से दिखाई देते हैं।

(४) इस निराशा में निष्क्रियता और गतिरोध पैदा होता है। यही वैयक्तिक और सामाजिक गतिरोध इस कथानक की नीव है।

और

इस भौमिक आधार पर आधारित कहानी इस प्रकार है—

हेम और अविनाश एक गाँव के रहने वाले हैं—(गाँव पृष्टभूमि में है; घटना-स्थल है कलकत्ता)। अविनाश कलकत्ते में पढता है और आजकल के अधकचरे युवकों की भाँति वह विद्रोही है, आदर्शवादी है, तर्कवादी है और अत में आतंकवादी बन कर हत्यारा भी बनना चाहता है। उसका सहपाठी अमिय एक चित्रकार है जो कलाकार है; रोमान्टिक कल्पनाएँ करता

है किन्तु जिसके पास नैतिक बल नहीं है और अपनी 'सेक्स' की क्षुधा शान्त करने के लिए उसके पास सौंदर्य और रूप का कोई महत्त्व नहीं है—वह केवल एक जड़ प्राणी है जो किसी से भी वासना की तृप्ति निचोड़ सकता है। कथानक को तेज बनाने के लिए ही विधवा हेम कलकत्ते आती है और एक सेठ और चौकीदार के चंगुल में फँस कर उनके द्वारा किये गये बलात्कार बिना उफ के स्वीकार कर लेती है। यह सब कथानक को तेज और चटपटा बनाने के लिए किया गया है। अमिय हेम को ढूंढता है। हेम उसे मिलती है और फिर कलकत्ते के एक होटल के कमरे में वही होता है जो सेठ के चौकीदार की कोठरी में नहीं होना चाहिए था, क्योंकि "अविनाश भी हाड और माँस के बने हुए शरीर का आदमी ठहरा और वासना यदि स्वाभाविक प्रवृत्ति है तो उससे इतनी घिन और इतना मुकरना क्यों"...और अंत में हेम जब सेठ की बात बताती है तो अविनाश उसकी हत्या करने जाता है।

परन्तु

उपन्यास की सबसे बड़ी असफलता यह है कि समस्त पात्रों से अधिक सुन्दर चरित्र-चित्रण सेठ का हुआ है और उसके प्रति वह स्वाभाविक घृणा जो लेखक पैदा करना चाहता था वह नहीं पैदा कर सका है, क्योंकि सेठ केवल व्यवहारकुशल के रूप में ही चित्रित होता है...न तो कहीं उसके शोषण का रूप प्रस्तुत किया गया है न व्यभिचार का और जो थोडा बहुत प्रसंग असंगत है भी वह दब इसलिए जाता है कि उपन्यास के प्रायः सभी पात्र कुछ न कुछ रूप में वैसे ही हैं, यहाँ तक कि—

अविनाश

भी असंतुलित चरित्र का व्यक्ति है—आदर्शवादी है पर कला का जीवन में स्थान नहीं मानता, मार्क्सवादी है फिर भी वह गांधीजी से प्रभावित है—विचारशील दार्शनिक है पर चरित्र-हीन है—जनआन्दोलन की बात करता है पर घोर व्यक्तिवादी और आतंकवादी के रूप में सेठ के कमरे में घुस कर उसकी हत्या करने की बात सोचता है—पढ़ने में तेज है पर क्लास में लड़के उसे सनकी कहते है—पीड़ा में ही जीवन निखरता है ऐसा उसका विश्वास है पर वह इतना भोगी है कि उसमें आत्म नियंत्रण नहीं है—वह ट्यूशन कर के पढ़ता है पर उसका मानसिक स्तर श्रमजीवी के समान नहीं है। वह जहाँ पुरुषार्थी बनना चाहता है वहीं उसकी मनोनीत दुर्बलता इस रूप में प्रस्तुत होती है कि अपने ऊपर बीती हुई समस्त असाधारण परिस्थितियों का आक्रोश दबा कर संचित करता जाता है जो एक कुंठा के रूप में प्रस्तुत हो कर उसे आतंकवादी अराजकता की ओर खींच ले जाती हैं—

किन्तु

हेम के चरित्र में सेठ के व्यभिचार के प्रति सहनशीलता असंगत है क्योंकि लेखक ने उसे शालीन सुसंस्कृत महिला बताया है; फिर पश्चात्ताप की कौन कहे वह स्वयम् इतनी प्रगतिशील बन जाती है कि अविनाश के प्रस्ताव पर कह बैठती है कि पुरुष-पुरुष सब बराबर हैं इसलिए जब

सेठ ने . . .तो तुम में क्या है—किन्तु उपन्यास के लेखक ने इस पर विचार नहीं किया कि न तो मार्क्सवाद के अनुसार आज वह आर्थिक संघर्ष ही समाप्त हो गया है कि जिसमें 'अर्थ-संघर्ष' हल हो जाने के बाद नये नैतिक माप-दण्ड बनेंगे और तब परम्परागत मान्यताएँ विशाल 'मानवतावाद' का विशिष्ट रूप ले कर प्रस्तुत होंगी और न आज किसी भी हेम के वर्ग की विधवा के हृदय में यह धारणा ही आयेगी; फिर हेम किस समाज की है ? किस वर्ग की है ? उसके क्या संस्कार हैं ? उसकी कौन सी दिशा है ? ये प्रश्न रह जाते हैं जिन्हें उपन्यासकार ने टाल दिया है ।

और

अनिता और अमिय का उपन्यास में क्या उपयोग है, यह दूसरा प्रश्न है । यदि अनिता और अमिय को उपन्यास से निकाल दिया जाय और बहुत सी बातें जो अविनाश के चरित्र की अमिय के वार्तालाप में व्यक्त होती हैं, उनको किसी रूप में प्रस्तुत किया जाय तो शायद उपन्यास अधिक सुगठित होता, क्योंकि इन दोनो पात्रों का उपन्यास में कोई उपयोग ही नही है—सिवा इसके कि बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि रूप मे उनको भी सजाने के लिए रख लिया जाय ।

हां, अमिय का वर्ग-प्रतिनिधि चरित्र अवश्य है । मस्ती, लापरवाही, बेफिक्री और फाकामस्ती के साथ-साथ संस्कारगत कृत्रिमता अमिय में पर्याप्त मात्रा मे है, किन्तु अमिय की इन सब प्रवृत्तियों का विकास नही हो पाया है और इसमें लेखक का दोष नही, स्वयम् पात्र की रचना ऐसी है कि इस लघु-उपन्यास में उसका निर्वाह असंभव था । अमिय की दुष्कृति को शायद लेखक इसलिए और भी नहीं प्रस्तुत कर पाया है, क्योंकि पतनग्रस्त सामंत युग (डिकेडेण्ट फ़्यूडेलिज्म) और बुर्जुआ वर्ग का आज के समाज में क्या स्थान है इसका वैज्ञानिक विश्लेषण स्वयम् उसके दिमाग में भी स्पष्ट नहीं है ; फिर जिस काल को उपन्यास के रचना-विधान में प्रस्तुत किया गया है उस काल में तो बुर्जुआ वर्ग में केवल दो प्रवृत्तियाँ ही थी, एक तो परम्परागत रूढ़ियों को ढोनेवाले होते थे और दूसरे विकासवादी होते थे, किन्तु अमिय इन दोनों में से एक भी नही है—शायद इसीलिए वह असफल भी है ।

शिल्प और शैली

की दशा यह है कि लेखक ने अस्सी पृष्ठ के उपन्यास में प्रथम ३३ पृष्ठ केवल 'स्वान्त.-सुखाय' लिखे है और उसमे जो कही-कही कथानक के सूत्र दिखलाई भी पड़ते हैं वे इतने हल्के एवम् क्षीण हे कि उनकी तारतम्यता नहीं के बराबर है , फिर उपन्यास की कथा एक बड़ी मामूली घटना से आरम्भ होती है और वह भी अस्वाभाविक ढंग से । वस्तुतः पूजीवादी कभी इतना व्यसनी नही हो सकता कि वह एक चौकीदार को उसको फँसाने के लिए भेजे । हाँ, यह प्रवृत्ति किसी बड़े जमींदार अथवा किसी बिगड़े रईस की हो सकती है ।

कथा-काल १९४०-४१ का है जो उपन्यास के विधान से चिपका हुआ है । वातावरण की प्रतिक्रिया जैसे सब पर पड़ती है वैसे ही युवकों पर भी पड़ती है, किन्तु लेखक ने उसकी प्रति-क्रिया प्रगतिशील अविनाश पर ही दिखाई है और बाकी सभी पात्र जैसे उसके प्रति उदासीन हैं, यहाँ तक कि यदि देखा जाय तो वह कुछ जानते ही नहीं ?

असफल प्रतीक भी जहाँ तहाँ बहुत मिलते हैं जैसे मृगी का प्रतीक। संगीत-समिति का हाल और विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किया गया आन्दोलन भी गठित रूप में न होने के कारण प्रभाव-शून्य हैं।

असंगत घटनाओं का तारतम्य बढ़ता गया है। कोई भी ऐसी घटना इस प्रकार नही उपस्थित की गयी जिसमें पात्र उस रूप में प्रस्तुत हो सकें। सभी सोचते हैं, क्रियाशीलता किसी में नहीं है, इसीलिए उपन्यास 'लचर' रूप में प्रस्तुत हुआ है।

कथा और विधान केवल दो पंक्तियों में आ सकते थे। न जाने किस असंयमित और शिथिल योजना का आश्रय लिया गया है; किन्तु लेखक का अहम् इतना बड़ा है कि उसके सामने उपन्यास के पात्रों का न्यायोचित विकास नही हो पाया है।

अनियंत्रित वर्णन-शैली के कारण कहीं-कहीं जरा जरा-सी बात के समर्थन में लेखक ने न-जाने कहाँ-कहाँ से लाकर सामग्री उपस्थित की है, जैसे नारी-वर्णन मे न जाने किन-किन मतों को लेखक ने उद्धृत किया है, जिनका उपन्यास से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

आधुनिक उपन्यास शैली की गति-विधि

आज हिन्दी उपन्यासों की शैली प्रेमचन्द के युग की शैली नही है। शिल्प और कथा-वस्तु की दिशा में सर्वथा नये प्रयोग हो रहे हैं। स्वयं प्रेमचन्द ने अपने युग में नये प्रयोग किये थे—इसलिए यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी उपन्यास की गति-विधि शिथिल नहीं है। उसकी एक दिशा जन्म पा चुकी है।

यह बात सत्य है, कि आज की कथा-शैली में 'सार्वभौम' (यूनिवर्सल) पात्रों की रचना नहीं हो रही है। केवल संकीर्ण और सीमित वृत्त में बन्द नायक ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं किन्तु जो भी प्रस्तुत किये जा रहे है उनमें एक नई प्रवृत्ति की जिज्ञासा है जिससे कोई न कोई नया रूप भविष्य में अवश्य निकलेगा। यह सत्य है कि इतने व्यक्तिवादी पात्रो के वर्णन में लेखक और कथा-वस्तु दोनों की क्षमता सीमित हो जाती है।

उपन्यास सरस हैं और सहज स्वाभाविकता के साथ-साथ बौद्धिक चिन्तन और मनन की तर्क-वितर्क-मयी गुत्थियों को भी चित्रित करने की चेष्टा की जा रही है—यह भी एक स्वस्थ दिशा है और यह आशा की जा सकती है कि इस शैली के प्रौढ़ होने पर कोई न कोई महत्त्वपूर्ण कृति अवश्य ही होगी।

साहित्यिक मान्यताओं में उस पक्ष को भी जोड़ने की चेष्टा की जा रही है जो अभी तक निकृष्ट समझा जा रहा था और यह भी उचित ही है क्योंकि यदि उपन्यास के पात्र मनुष्य हैं तो वे केवल देवता के रूप में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, यह कहना ग़लत होगा क्योंकि मनुष्य सदैव देवता ही नहीं रहता, इसलिए जहाँ तक उसके संतुलित चरित्र की विकास-प्रवृत्ति के यथार्थवाद को प्रस्तुत किया जा रहा है वहाँ तक इसे मान्य मानना ही पड़ेगा। सफलता और असफलता तो लेखक पर निर्भर है।

पुस्तक-परिचय

नियामक ज्यामिति, भाग २—लेखक—डाक्टर ब्रजमोहन, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय : प्रकाशक—बिड़ला हिन्दी प्रकाशन मंडल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय; पृष्ठ संख्या २३४; दफ्ती की जिल्द; न्यूजप्रिंट पर छपा; मू० २॥)

लेखक अपने विषय का पंडित है; जहाँ तक गणित का प्रश्न है, इसमें कोई संदेह नहीं कि विषय का विवेचन अच्छा हुआ है। परंतु हिंदी मे उच्च गणित की पुस्तकों के लिखने मे कई समस्याएं ऐसी उपस्थित होती हैं जिनमें मतभेद हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में भी थोड़ी सी बातें ऐसी हैं जो बहुत अच्छी नही लगती। मै इन पर ही विशेष रूप से विचार करता हूँ जिससे आगामी संस्करणों मे सुधार हो सके और अन्य लेखक भी लाभ उठा सकें।

पृष्ठ ५ पर "एकांगी" शब्द से स्पष्ट नहीं है कि क्या अर्थ है।

पृष्ठ ९ पर "में से गुजरता है" संस्कृत शब्दों के बीच खटकता है; 'से हो कर जाता है' यह लिखना अधिक अच्छा होता।

पृष्ठ १० पर "मूलाक्ष" से original axis समझा जा सकता है; इसलिए radical axis के लिए समस्पर्शी अक्ष या इसी प्रकार का कोई अन्य नाम संभवतः अधिक अच्छा होता।

पृष्ठ १६ पर "भिन्न-२" के बदले 'भिन्न-भिन्न' लिखा जाता तो अधिक अच्छा रहता। शब्दों के बाद २ लिख कर उनकी पुनरावृत्ति की प्रथा तो साधारण साहित्य से भी उठी जा रही है। गणित में २ लिखना और भी दोषपूर्ण है क्योंकि कहीं-कहीं अर्थ ही बदल जा सकता है।

पृष्ठ २१ पर "वृत्तो के कटान बिन्दुओं के मध्येन जाता है" के बदले 'वृत्तों के छेदन-बिंदुओं से हो कर जाता है' अधिक अच्छा होता, क्योंकि 'के मध्येन' दुविधा रहित नही है। कटान बिंदु के बदले छेदन-बिंदु अधिक अच्छा है।

पृष्ठ २३ पर "उभयनिष्ठ" के बदले 'सर्वनिष्ठ' अधिक अच्छा होता, क्योंकि वृत्त दो से अधिक हैं और जो अक्ष दो से अधिक वस्तुओं की है वह सर्वनिष्ठ है, उभयनिष्ठ नही।

प्रस्तुत पुस्तक मे वृत्तसंहति, परवलय, दीर्घ वृत्त और अति परवलय पर विचार किया गया है। भाग १ और भाग २ दोनों मिल कर इंटरमीडियेट के पाठ्यक्रम के लिए पर्याप्त हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक विद्यार्थियो के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। प्रूफ की गलतियां बहुत कम है। प्रथम २५ पृष्ठों मे केवल एक स्थान पर (पृष्ठ २३ के प्रश्न ५ में जहाँ तीसरे और चौथे पदों से क्रमानुसार य और र छूट गये है) प्रूफ की भद्दी त्रुटि मिली। छपाई अच्छी है

परन्तु चित्र भद्दे हैं। सब बातों पर दृष्टि रखते हुए मानना पड़ेगा कि पुस्तक उच्च कोटि की है और लेखक हमारे धन्यवाद और बधाई का पात्र है।

ठोस ज्यामिति—लेखक—कमलमोहन, एम० ए०; प्रकाशक—बिड़ला हिंदी प्रकाशन मंडल, काशी हिंदू विश्वविद्यालय; पृष्ठ संख्या २१३; दफ्ती की जिल्द; न्यूजप्रिंट पर छपा; मूल्य २)

यह पुस्तक इंटरमीडियेट के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी है। विषय का प्रतिपादन अच्छा हुआ है। चित्र भी बहुत-से दिये गये हैं जिससे विषय के समझने में विद्यार्थियों को सुगमता होगी। प्रश्नों की संख्या भी पर्याप्त है। छपाई-सफाई अच्छी है। प्रूफ-संशोधन भी सावधानी से किया गया है। विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक अवश्य बहुत उपयोगी होगी। उत्तर प्रदेश के पाठ्यक्रम से तुलना करने पर प्रमेयों (साध्यों) की संख्या आवश्यकता से बहुत अधिक जान पड़ती है, परंतु अनावश्यक विषय सुगमता से छोड़ दिये जा सकते है।

एक-दो त्रुटियां जो देखने में आयी वे ये हैं — feet के लिए "फिट" लिखना ठीक नहीं है। एक तो शब्द 'फीट' है, फिर यह बहुवचन है। अंग्रेजी से foot के बदले 'फुट' ले लेना पर्याप्त होना चाहिए; फिर इसी शब्द का बहुवचन हिंदी व्याकरण के अनुसार बनाना चाहिए। space के लिए "अवकाश" खटकता है; काशी नागरी प्रचारिणी सभा की शब्दावली में दिया गया 'आकाश' इससे अधिक उपयुक्त है। foot of the perpendicular के लिए "लंब का मूल" (पृष्ठ ३३) अच्छा नहीं है, 'लंब का पाद' अधिक अच्छा है, क्योंकि 'मूल' origin के लिए आता है। parallelogram के लिए "समानाभुज" सर्वथा अक्षम्य है; प्रचलित शब्द 'समानान्तर चतुर्भुज' में क्या ऐसी त्रुटि थी कि "समानाभुज" गढ़ना पड़ा; फिर समानाभुज (=समना+अभुज) का अर्थ ही कुछ नहीं है। इसी प्रकार parallelopiped के लिए "समानाफलक" भी अनुपयुक्त है। पृष्ठ २७ पर तृतीय दशा के बदले "तृतीया दश" छप गया है।

बीज गणित—लेखक—डाक्टर झम्मनलाल शर्मा, डी० एस-सी०, प्रिंसिपल, नालंदा कालिज, बिहार; प्रकाशक—हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृष्ठ संख्या ३२६, दफ्ती की जिल्द; मूल्य ३॥)

यह पुस्तक प्रोफेसर स्वामी दयाल सेठ और डाक्टर झम्मनलाल शर्मा की अंग्रेजी पुस्तक "इंटरमीडियेट अलजेबरा" के आधार पर लिखी गयी है। अंग्रेजी पुस्तक वर्षों से उत्तर प्रदेश के इंटरमीडियेट बोर्ड द्वारा चुनी हुई सूची में है और कई कॉलेजों में पढ़ायी जाती है। हिंदी संस्करण में मूल पुस्तक के सभी गुण वर्तमान हैं; ऊपर से, भाषा सरल होने के कारण, अंग्रेजी की अपेक्षा यह पुस्तक इंटरमीडियेट के विद्यार्थियों को अधिक सुगमता से समझ में आयेगी। आशा है हमारे इंटरमीडियेट कॉलेजों के अध्यापक और विद्यार्थी इससे लाभ उठायेंगे।

अंग्रेजी संस्करण का एक नवीन संस्करण इन दिनों प्राप्य है जो पहले वाले संस्करणों से कई बातों में अच्छा है। खेद है कि हिंदी संस्करण के छपने में दस-ग्यारह वर्ष लग गये, और

इसलिए अंग्रेजी संस्करण की नवीनतम अच्छाइयों का समावेश हिंदी संस्करण में नहीं हो पाया है। तो भी हिंदी संस्करण काफी अच्छा है और निःसंकोच पाठ्य पुस्तक बनाया जा सकता है।

हिंदी संस्करण का प्रूफ-संशोधन बड़ी सावधानी से किया गया है ; यहां तक कि पुस्तक के अंत में एक शुद्धि पत्र भी दे दिया गया है जिसे देखने से पता चलता है कि अधिकांश अशुद्धियां टूटी हुई मात्राओं के कारण उत्पन्न हुई हैं।

—गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया—लेखक—श्री भरतसिंह उपाध्याय एम० ए०, प्रकाशक सरल साहित्य प्रकाशन, बड़ौत (मेरठ); पृष्ठ संख्या ६९; मूल्य १)

एशिया के वर्तमान अभ्युत्थान में दक्षिण-पूर्वी एशिया अपना विशिष्ट स्थान और महत्व रखता है। पं० जवाहरलाल नेहरूजी इस बात पर बड़ा बल दे चुके हैं कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों का एक संगठन होना चाहिए। उनका एक संघ होना चाहिए। स्वभावतः भारत ही इस संगठन और संघ का नेतृत्व कर सकता है। एशिया के इस भाग के देशों के साथ भारत का प्राचीन काल से सांस्कृतिक, धार्मिक तथा व्यापारिक संबंध रहा है। स्वाधीन होने के उपरान्त अब उसे इन देशों के साथ अपने प्राचीन संबंधों को पुनरुज्जीवित करना चाहिए और अपने साथ उन्हें एक दृढ़ संगठन में आबद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस छोटी सी पुस्तिका में कुल सात अध्याय है। पहले अध्याय में सम्पूर्ण एशिया के साथ भारत के प्राचीन सांस्कृतिक संबंध का दिग्दर्शन कराया गया है और यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है कि भारत ने सम्पूर्ण एशियाई महाद्वीप मे सांस्कृतिक एकता स्थापित करने मे महत्वपूर्ण योग दिया है। बाद के ६ अध्यायों में दक्षिण-पूर्वी एशिया के ६ देशों—श्रीलंका, बरमा, सियाम, भारत-चीन, (हिन्द चीन) इंडोनेशिया तथा मलाया का परिचय दिया गया है।

विद्वान् लेखक ने निश्चय ही एक उपयोगी विषय चुना है। राजनीति से रुचि रखनेवाले प्रत्येक भारतीय को इस विषय की जानकारी रखनी चाहिए। विषय का प्रतिपादन लेखक ने अच्छे ढंग से किया है और संक्षेप में उन सभी बातों की विवेचना की है जो विषय को हृदयंगम करने के लिए आवश्यक है। समय आ गया है कि भारतवासी अपने पास-पड़ोस के देशों के साथ अपना परिचय और संबंध बढाये। इस दृष्टि से पुस्तक की उपादेयता असंदिग्ध है।

सुबोध युद्धशास्त्र—(भाग पहला) लेखक—कैं० शं० गं० चाफेकर, प्रकाशक—जनवाणी प्रकाशन ४५ बुधवार पेठ पुणें २, पृष्ठ संख्या ६० मूल्य १)

युद्ध के साथ युद्ध विद्या अथवा युद्धशास्त्र का भी आधुनिक काल में बहुत विकास हुआ है और देश के स्वाधीन बन जाने के उपरान्त अब यह आवश्यक हो गया है कि इस शास्त्र का

भी समुचित अध्ययन किया जाय। स्वाधीनता की रक्षा करने का दायित्व देश के प्रत्येक नागरिक पर है अतः युद्ध शास्त्र का अध्ययन-अनुशीलन सेना के लोगों को ही नहीं, सभी नागरिकों को करना चाहिए। जहां तक हमें ज्ञात है राष्ट्रभाषा में युद्ध शास्त्र की विवेचना करने वाले साहित्य का नितान्त अभाव है। प्रस्तुत पुस्तिका में युद्ध नीति के मुख्य-मुख्य तत्त्वों का विवेचन किया गया है। आक्रमण और आत्म-रक्षा के समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, युद्ध-काल में सैनिक शक्ति की मितव्ययिता की क्या आवश्यकता है, संरक्षित सेना का क्या महत्त्व है, सागरी स्वामित्व की आज के युद्ध में कितनी आवश्यकता पड़ती है, रसद मार्ग की सुरक्षा कैसे करनी चाहिए—आदि अनेक विषयों पर इसमें विचार किया गया है। युद्ध तथा शस्त्रास्त्र संबंधी काफी जानकारी पाठकों को इस पुस्तक से प्राप्त हो सकती है। हम इसे युद्ध-विज्ञान की प्रारंभिक पुस्तिका कह सकते हैं।

पुस्तक की सब से बड़ी त्रुटि जो पग-पग पर खटकती है भाषा की शिथिलता है। मराठी भाषा-भाषी हो कर भी लेखक ने ऐसी उपयोगी पुस्तक राष्ट्र भाषा में लिखी है यह सराहनीय है। किन्तु व्याकरण सबधी भद्दी गलतियों का निराकरण तो करा ही लेना चाहिए था। आशा है कि लेखक महोदय अगले सस्करण में इस दोष का परिहार कर देंगे। पुस्तक की छपाई, सफाई तथा कागज अच्छा है।

—शंकरदयालु श्रीवास्तव, एम० ए०,
(भारत-संपादक)

दो पत्तियाँ,एक कली; लेखक—डा० मुल्कराज आनन्द; अनु०—श्याम् सन्यासी, प्रकाशक—चेतना प्रकाशन लिमिटेड, हैदराबाद; मूल्य० ४।-)।

प्रस्तुत उपन्यास भारत के लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार डा० मुल्कराज आनन्द के अंगरेजी उपन्यास (Two Leaves and A Beed) का हिन्दी अनुवाद है। अनूदित रचनाओं की समीक्षा द्विविधा का काम है। प्रश्न उठता है कि समीक्षक के सामने मूल रहना चाहिए या अनुवाद। कहा जायगा, जब पाठकों के सामने अनुवाद है तो इस विषय में भ्रम की गुंजाइश कहाँ है। पर अनुवाद मूल से परिचय कराने के लिए होता है, फिर समीक्षक मूल को अपनी दृष्टि से कैसे हटा सकता है ? साधारणतः यह अनुवाद अच्छा बन पड़ा है। भाषा सुधरी, मुहावरेदार तथा प्रवाहपूर्ण है। मूल में जिस प्रकार शैली भाव तथा वर्णन के सन्तुलन का सफल निर्वाह कर सकी है, उसी प्रकार अनुवादक भी इस शैली की रक्षा हिन्दी में एक सीमा तक कर सका है। यत्र-तत्र कुछ अप्रचलित शब्द तथा गलत मुहावरे या पद आ गये है; और कहीं कहीं व्याकरण संबंधी भूलें भी हैं। छपाई तथा प्रूफ की गलतियाँ भी अधिक जान पड़ती हैं, जो हिन्दी प्रेसो का अपना दुर्भाग्य है। सब मिलाकर यह अनुवाद अच्छा कहा जा सकता है।

शैली तथा चारित्रिक विन्यास की दृष्टि से डा० मुल्कराज के उपन्यासों में प्रेमचन्द जैसी सरलता तथा सीधापन (Directness) है। इस रूप में हम इनको प्रेमचन्द की पर-

म्परा में मान सकते है। परन्तु इनके उपन्यासों तथा प्रेमचन्द के उपन्यासों में मौलिक अन्तर है। इनमें प्रेमचन्द के उपन्यासों जैसा कथावस्तु और चरित्र संबंधी उलझाव नहीं है। इस 'दो पत्तियाँ एक कली' में भी कथावस्तु संक्षिप्त है, चरित्र भी अधिक नहीं है। कम से कम सक्रिय चरित्र कम ही हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द में यथार्थ के साथ आदर्श की स्थापना मिलती है, पर मुल्कराज ने निर्पेक्ष भाव से यथार्थ को उपस्थित किया है। कही-कहीं रूमानी रंगीनी भी है, पर यथार्थ के तीखे तथा स्पष्ट रंगो मे वह मिलजुल गयी है। इस उपन्यास में लेखक ने चायबागान (आसाम), के जीवन का सूक्ष्म और यथार्थ वर्णन किया है। इतनी दूर आसाम की घाटी के पिछले युग के इस जीवन के विषय में उत्सुकता वैसे ही जाग जाती है। पर लेखक सफल कलाकार है, उसने अपने पात्रो के प्रति अथवा सिद्धांतों के प्रति मोह नहीं प्रकट किया है। सिद्धांत विशेष से बँधे हुए लेखक अक्सर अपने सिद्धांत का अपनी कला पर लादने का मोह छोड नहीं पाते है। लेखक ऐसा कर सका है, यह इस उपन्यास की बडी विशेषता है। डाक्टर डीलाहेवर समाजवादी भावधारा से प्रभावित है, उसने मेडिकल सर्विस से इस्तीफा दे दिया है। वह अंगरेज होकर भी अपने वर्ग की सामान्य भावनाओं के विरुद्ध भारतीय शोषित जनता के अधिकारों के प्रति जागरूक है। एक ओर इसके मन में अन्तर्द्वंद्व चलता है और दूसरी ओर अपने वर्ग के लोगों से उसका संघर्ष है। इन दोनों स्थितियों ने अतिरंजना से काम नहीं लिया है, यही कारण है कि डीलाहेवर की कमजोरियाँ भी हमारे सामने स्पष्ट हैं। लेखक ने जैसे किसी पात्र पर अपना आदर्श लादा नही है, उसी प्रकार अपनी ओर से किसी परिस्थिति या घटना को उत्पन्न भी नही किया है। यही वजह है कि दो विभिन्न वर्गों के विरोधी स्वार्थों तथा संघर्षमयी परिस्थितियों का संवेदनशील चित्रण करके भी लेखक ने वर्ग-संघर्ष नही दिखाया है। वास्तव मे उन परिस्थितियों तथा सीमाओं में यह स्वाभाविक नहीं होता।

इस उपन्यास के चरित्र दो वर्गों मे विभाजित हैं। एक ओर शासक और शोषक वर्ग के अंगरेज (साहब लोग) चरित्र है और दूसरी ओर शासित और शोषित वर्ग के भारतीय चरित्र है जिनमे भिन्न प्रान्तों तथा भिन्न स्तर के लोग है। चार्ल्स क्राफट कूक तथा रेगी हण्ट उन अंगरेज चरित्रो मे है जो उन दिनो अपने मन मे यह दृढ भावना लेकर भारत में आते थे कि वे सभ्य तथा महान जाति के है और असभ्य भारतीयों पर शासन करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसा नहीं कि यह भावना केवल चार्ल्स जैसे कूटनीतिज्ञ व्यवहारकुशल व्यापारी तथा रेगी हण्ट जैसे कठोर और विलासी शासको में ही हो, वरन् यह ऐसी व्यापक हो गयी थी कि हीटी जैसे सहानुभूतिशील तथा बारबरा जैसी कोमल भावनावाले अंगरेजों के मन में भी घर कर गयी थी। केवल डीलाहेवर ही एक ऐसा व्यक्ति है जो इस भावना से अपने को अलग रख सका है, परन्तु उसे भी आन्तरिक द्वन्द्व सहना पड़ रहा है और उपन्यास में उसको अपने वर्ग की स्पर्द्धा से अधिक बल मिला है, शुद्ध आदर्श से कम। इसीलिए उसके मन में भी कोई निश्चित कार्य की योजना नहीं है, उसका आदर्श केवल सहानुभूति भर

जगा सका है। चाय बागान के भारतीय चरित्रों में भी दो वर्ग हैं—एक निर्बल शोषितों का जिनमें गंगू, नारायण आदि है और दूसरा शोषण में सहयोग देनेवाले स्वार्थी तथा निर्लज्ज वर्ग का जिसमें सरदार बूटा, नियोगी तथा शशिभूषण बाबू और मारवाड़ी आदि हैं। एक वर्ग अपनी कमजोरियों में नितान्त हीन और अत्याचारों के प्रति उदासीन हो चुका है और दूसरा अपने हीन स्वार्थों में इतना पतित हो गया है कि उसे अपनी स्थिति के प्रति क्षोभ भी नही है।

इन्ही चरित्रों के माध्यम से उपन्यास की कथावस्तु अग्रसर होती है। कथावस्तु सुगठित तथा संक्षिप्त है। कुछ ही घटनाओं के आधार पर उपन्यास का सारा ढाँचा खड़ा है। इस प्रकार इस उपन्यास मे एक ओर शासक वर्ग का अहंकार और उसके निष्ठुर उत्पीड़न का रूप सामने आता है और दूसरी ओर शोषित वर्ग की सुप्त आत्माओं की निरीहता प्रकट होती है। इस उपन्यास मे क्रान्ति तथा सघर्ष की आग तथा ज्वाला कहीं प्रकट नही होती, यह उपन्यास की सीमा में स्वाभाविक भी नही था। पर उसकी सुलगन का आभास अवश्य मिलता है। उपन्यासकार कौतूहल को बनाये रखने में सफल हुआ है। अन्त मे ऐसा जान पडता है कि लेखक व्यंजित करता है कि वर्त्तमान (उपन्यास की) परिस्थितियों के गर्भ मे विस्फोट की आग दहक रही है जो एक दिन अवसर पाकर फूट निकलेगी और उस समय शोषक वर्ग अनुभव करेगा कि 'उसके पीछे साक्षात मौत दौड़ी चली आ रही है'। रेगी हण्ट की गोली से जब गगू धराशायी हो जाता है, उस समय भागते समय उसे ऐसा ही अनुमान हुआ था। लेखक ने इस प्रकार कलात्मक ढंग से अपने उद्देश्य को न कह कर भी कह दिया है। यह उपन्यास लेखक की सफल कृति है, इसमे सन्देह नही।

—रघुवंश एम० ए०, डी० फिल०

कला-विज्ञान—लेखक—डा० हरद्वारीलाल शर्मा, शास्त्री, प्रकाशक—हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृष्ठ संख्या ८२, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक लेखक के कला विषयक कुछ निबधो का संग्रह है। इन निबधों में कला के अनेक अगो का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। कला के मूलभूत तत्व क्या है, उनका मानव-जीवन से क्या संबध है तथा कलात्मक अनुभूति का क्या स्वरूप है—आदि बातों की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या इन निबंधो में की गयी है। लेखक ने न केवल भारतीय साहित्य एवं दर्शन मे उपलब्ध कला सबंधी मान्यताओ की ऊहापोह की है अपितु तद्विषयक पाश्चात्य विचार-परपरा का भी विश्लेषण किया है। इस प्रकार यह पुस्तक कला की व्यापकता एवं उसका तत्व जानने वालों के लिए उपयोगी है, विशेषकर हमारे विश्वविद्यालयो के छात्रों के लिए यह बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी।

कला—जैसे महत्वपूर्ण विषय पर अभी तक हिंदी साहित्य में बहुत कम लिखा गया है। जब तक हमारे विद्यार्थी कला के मर्म को नही समझ लेते तब तक वे साहित्य, संगीत, स्थापत्य,

मूर्ति-कला एवं चित्र कला का वास्तविक आनंद उठाने में असमर्थ रहेंगे। भारतीय जीवन-दर्शन में कला को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। प्राचीन भारत में कला का ज्ञान आवश्यक था। संतोष की बात है कि हमारे स्कूलों के पाठ्यक्रम में कला भी एक विषय है और इसकी ओर विद्यार्थियों की प्रवृत्ति बढ़ रही है। हिंदी के अधिकारी विद्वानों द्वारा कला के विभिन्न अंगों पर उपयोगी पुस्तकें लिखी जानी चाहिए, जिससे इस खटकने वाले अभाव की शीघ्र पूर्ति हो सके। ऐसी पुस्तकें सरल भाषा मे और सचित्र होनी चाहिए।

हम डा० हरद्वारीलाल शर्मा का साधुवाद करते है जिन्होंने ऐसी उपयोगी कृति हिंदी में लिखी। आशा है हिंदी साहित्य सम्मेलन सुलभ साहित्य माला के अंतर्गत कला संबंधी अन्य प्रकाशनो द्वारा राष्ट्रभाषा की श्रीवृद्धि करता रहेगा।

—कृष्णदत्त वाजपेयी, (आर्कियालॉजिकल अफसर उत्तर प्रदेश)

क्या गोरी क्या साँवरी (निबन्ध-संग्रह)—लेखक—श्री देवेंद्र सत्यार्थी; प्रकाशक—चेतना प्रकाशन लिमिटेड, आबिद रोड हैदराबाद। पृष्ठ संख्या २००, मूल्य ७ रुपये,

'क्या गोरी क्या साँवरी' लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के उपासक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के उन्नीस निबन्धों का संग्रह है। लेखक ने 'आमुख' में लिखा है, 'मेरा यह दावा बिल्कुल नहीं कि सभी निबन्ध एक ही श्रेणी के हैं या यह कि सब का महत्व एक जैसा है।' पर वस्तुतः संग्रह के सभी निबन्धों का स्तर उच्च कोटि का है, और उनके विषय तथा रूपगठन की विविधता ही उसकी प्रभावात्मकता का रहस्य है। 'चम्बा' से लेकर 'मणिपुर' तक तथा पंजाब के ग्राम्य प्रदेश से 'केरल के जलमार्ग' तक विस्तृत उठते, जागते और गाते हुए भारत का चित्र इन निबन्धों में उभर उठा है। यदि एक ओर 'ठक्कर बापा' ऐसे लोकसेवक, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ऐसे चिरयुवा एवं प्रतिभाशील साहित्यसेवी एवं श्री 'यशपाल' तथा श्री बलवन्तसिंह ऐसे प्रभावशाली लेखकों का व्यक्तित्व निबन्धकार सत्यार्थी की लेखनी से समुद्भासित हो उठा है, तो दूसरी ओर उनके 'चंबा याद रहेगा' 'गोदावरी', 'मेरी जन्मभूमि', 'केरल के जलमार्ग पर', तथा 'मेले भी आते रहे', ऐसे निबन्धों में प्रकृति एवं लोकजीवन की आवेगमय रमणीयता मुखर हो उठी है। 'यदि मेघाणी जी मिले होते' और 'चित्र सामने पड़ा है' संस्मरणात्मक निबन्ध है, पर प्रथम निबन्ध में पिरोए हुए लोकगीत तथा दूसरे निबन्ध में नगों की तरह जड़े हुए राष्ट्रीय संग्राम के ऐतिहासिक उद्घोष लोकसाहित्य के पुजारी मेघाणीजी तथा स्वतंत्र लोकराज्य के अग्रदूत बापू के संस्मरणों को समीचीन पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। 'क्या गोरी क्या साँवरी', 'अध्ययन कक्ष में' तथा 'अलका मिल गई' मुख्यतः व्यक्ति-व्यंजक निबन्ध है, पर इनमें भी लेखक की व्यापक संवेदना की अभिव्यक्ति स्वाभाविक कलात्मक निरपेक्षता से युक्त है। 'जहाँ दो साहित्य मिलते हैं' तथा 'भारत की राष्ट्रभाषा' में लेखक ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की महत्ता तथा प्रादेशिक भाषाओं से उसके सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध पर स्तुत्य प्रकाश डाला है।

पूरे संग्रह में सत्यार्थीजी की सरल रसमय पर अनुरंजित शैली की अनोखी छटा व्याप्त है। भाषा में एक ऐसा प्रवाह है, जो पाठक को बरबस अपने साथ बहा ले जाता है। सत्यार्थीजी जनजीवन की ओर और तेजी से अग्रसर हो रहे हैं और धरती के नए चेहरे को देखने तथा उसे अंकित करने का प्रयास कर रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है। वे कहते हैं, 'मैं समझता हूँ कि आज के निबन्धकार पर यह दायित्व आ गया है कि वह पुरानी संस्कृति में जकड़ी हुई जनता को झंझोड़ कर नई संस्कृति के निर्माण के लिए तैयार करे। वस्तुतः आज जनवादी संस्कृति ही प्रगतिशील शक्तियों का साथ दे सकती है।' पर आशा है 'जनवादी' संस्कृति के निर्माण में सत्यार्थीजी की स्वाभाविक रसमय शैली तथा भारतीय लोकजीवन की सरस परम्परा में उनकी आस्था लुप्त न होगी। 'प्रगतिशीलता' के संकीर्ण रूप से दूर रह कर तथा स्वभावतः प्रगतिशील भारतीय लोकसंस्कृति में अपनी आस्था बनाए रख कर ही सत्यार्थीजी नूतन किन्तु स्वस्थ जनजीवन का निर्माण कर सकते हैं। मुद्रण तथा आवरण सुन्दर होते हुए भी, अच्छा होता, यदि प्रस्तुत पुस्तक का मूल्य कम होता, जिससे अधिक से अधिक पाठक इससे लाभ उठा सकते।

—जितेन्द्रसिंह एम० ए०,
(सहायक सम्पादक, लीडर)

पंचतन्त्र (हिन्दी रूपान्तर)—रूपान्तरकार—श्री सत्यकाम विद्यालंकार, प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली; मूल्य साढे तीन रुपये।

आचार्य विष्णु शर्मा का लिखा हुआ पंचतन्त्र विश्व कथासाहित्य में अपना सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है। छठी शताब्दी में इस ग्रंथ का अनुवाद विदेशी भाषाओं म होना प्रारंभ हुआ। तब से अब तक ससार की प्रायः सभी उन्नत भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं।

भारतीय नीतिशास्त्र को सरलतापूर्वक अल्पकाल में समझने के लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। पांच भागों में संकलित लोककथाओं का संकलन ही पंचतंत्र है। कथाओं और यत्र-तत्र प्रसंगात् आये हुए कतिपय नीतिवाक्यों का आधार लेकर श्री सत्यकाम जी ने इस रूपान्तर को प्रस्तुत किया है। रूपान्तर करने में जो दृष्टिकोण अपनाया गया है और प्रकाशक ने स्वरूप और आकार को जो सौंदर्य प्रदान किया है उसकी प्रशंसा करते हुए रूपान्तर की भाषा और शैली पर निराशा प्रकट करनी पडती है। रूपान्तर और नवीन दृष्टिकोण का तात्पर्य मौलिकता और यथार्थता का मूलोच्छेदन नहीं होता। इस रूपान्तर में जो भाषाशैली अपनायी गयी है उससे पंचतंत्र के मूल उद्देश्य तिरोहित-से जान पडते हैं—जैसे—(१) 'लेकिन बन्दर भी हठी था वह पूरे बल से कील निकालने में जूझ गया। अन्त में पूरे झटके के साथ कील निकल आयी किन्तु उसके निकलते ही बन्दर का पिछला भाग शहतीर के चिरे हुए दो भागों के बीच में आकर पिचक गया। अभागा बन्दर वहीं तड़प-तड़प कर मरगया। (पृष्ठ १७)

यहाँ 'जूझ' शब्द यत्नशील या जुट जाने का भाव व्यक्त न कर मरने या शहीद होने का अर्थ प्रकट करता है। और 'पिछले भाग का दब कर पिचक जाना' पाठक को कुछ सोचने समझने के लिए विवश करता है। मूल पंचतंत्र में वृषण (अण्डकोश) का मध्यगत होना लिखा है। रूपान्तर में जिसे पिछला भाग लिखा गया है।

(२) 'तुमने आजतक मेरा कहा नहीं मोड़ा था × × × तुम किसी और के लिए लंबे सांस लेते हो।'

इसी प्रकार की अस्त-व्यस्त प्रान्तीय बोली से प्रभावित भाषा और गतिहीन, रुग्ण एवं वैधव्यव्रतधारिणी शैली इस पुस्तक की विशेषता है। कृदन्त, तद्धित के प्रयोग पदे-पदे स्खलित हैं। लिंग और वचनों के प्रयोग व्याकरण के बन्धनों से मुक्त हैं। हमें विश्वास है कि प्रकाशक ने जिस उत्साह से इस संस्करण को प्रकाशित किया है उससे अधिक उत्साह से द्वितीय संस्करण मे भाषा-गत अप्रत्याशित भूलों का भी परिमार्जन करेंगे।

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी—अनु०—श्री काशीनाथ त्रिवेदी; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृष्ठ २७६, मूल्य डेढ़ रुपया,

इस पुस्तक मे महात्मा गाधी जी के भाषा और लिपि संबंधी उन विचारों को संकलित किया गया है, जिन्हें वे अपने जीवनकाल में प्रार्थना सभाओं मे भाषणों द्वारा तथा हरिजन में लेख लिखकर व्यक्त किया करते थे। इन विचारों का समर्थन और विरोध महात्मा जी के जीवनकाल ही में पर्याप्त हो चुका था। परिणामस्वरूप नवीन विधान में देश ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया।

इस पुस्तक का प्रथम सस्करण ऐसे समय (१९४७) मे प्रकाशित किया गया था जब हिन्दी और हिन्दुस्तानी के संघर्ष से दिल्ली काँप रही थी। अन्त में हिन्दुस्तानी नाम की कोई वस्तु न रह जाने पर भी जून सन् १९५२ मे इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन संस्था के उन प्रतिक्रियावादी भावों का प्रकाशन है जो शायद राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति अब भी संचित और शेष है।

प्रस्तुत पुस्तक एक स्वर्गीय विचारक के विचारों का संकलन है पर प्रकाशक ने उन्हें लेखक का पद प्रदान किया है। तथापि ऐसी अवस्था में जब कि लेखक निर्वाण पद प्राप्त कर चुका है उसकी कृति की आलोचना करना हम ठीक नही समझते। साथ ही प्रकाशक से भी इतना विनम्र अनुरोध करना चाहते हैं कि राष्ट्र के विधान ने जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है और राज्य तथा राष्ट्र उस विधान के अनुसार उसे कार्यान्वित कर रहा है तब हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा का पद देना और उसका प्रचार करना राष्ट्रीय कार्य नही बल्कि राष्ट्र के विधान का अपमान करना है। आशा है, नवजीवन प्रकाशन संस्था के

संचालकगण अपनी संस्था की परम्परा, मर्यादा और राष्ट्रीय सेवाओं का पुनर्निरीक्षण और स्मरण कर भविष्य के लिए सचेष्ट रहेंगे। —देवदत्त शास्त्री

सुभाष-बावनी—लेखक तथा प्रकाशक—श्री सिद्धेश्वर शुक्ल एम० ए०, एम० हाई स्कूल ब्यावर (राजपूताना) मूल्य—३ आने

प्रस्तुत पुस्तिका नेताजी के तिरपनवें जन्म-दिवस के उपलक्ष में लिखी गयी है। यह वीर रस-प्रधान काव्य है। आरंभ में छोटा-सा वक्तव्य है, इसके पश्चात् स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा लेते हुए नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस का चित्र है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, पुस्तिका में कुल ५२ छंद हैं। इन छंदों में लेखक ने बड़ी योग्यता और कौशल से नेताजी को रामदूत स्वीकार किया है और उनके त्याग, तप तथा बलिदान को रामभक्ति माना है। नेताजी हमारे देश के लोक-प्रिय नायक रहे हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण लोक-हित -चिन्ता में बीता है। ऐसे लोकनायक को काव्य का विषय बनाकर लेखक ने प्राचीन प्रसिद्ध कृति का समर्थन करने के साथ-साथ वर्तमान हिन्दी-काव्य-जगत् की एक आवश्यकता की पूर्ति की है। काव्य-कौशल की दृष्टि से कोई छंद विशेष रूप से उल्लेखनीय नहीं है। भाषा भी लचर और शिथिल है। एक छंद देखिए:—

जय हिन्द बोल उठी वीर वाहिनी सवेग,
नेताजी ने आज रण-दुंदुभी बजा दई।
भ्रुंग भ्रुंग वीरों के प्रचण्ड सिंहनाद से,
प्रकंपित दिगन्त हुआ, धरा धूर छा गई॥
दिव्य-बलिदान पर्व पावन प्रतीक पुण्य,
गगन तिरंगी तुंग ध्वज लहरा गई।
झुका राम-दल मानो सेतु बाँधने को फिर,
चर्चिल की चेनल भी चुल्लू में समा गई॥

पूरी पुस्तिका मे इसी प्रकार के छन्दों द्वारा नेताजी के एकांगी चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। लेखक अपनी इस रचना में महाकवि भूषण की 'शिवाबावनी' से अधिक प्रभावित है। वही छंद, वही शैली, वही भाव-व्यंजना और वही काव्योत्कर्ष, पर वह भाव-शबलता और वेग नही है। इतना होते हुए भी लेखक का यह प्रथम प्रयास सफल रचना है और इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भविष्य में हमें लेखक की उच्चकोटि की रचनाएँ देखने को मिलेंगी।

मिर्च का मजा—लेखक—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, नयाटोला, पटना; मूल्य १२ आना

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और कलाकार हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने उच्चकोटि के काव्य के साथ-साथ अपने जीवन के सुखद क्षणों में बालो-

पयोगी रचनाएँ भी की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी बालोपयोगी सात कविताओं का संग्रह है। सबसे पहली रचना है—मिर्च का मजा। इसमें एक काबुली की हँसी उड़ायी गयी है। इसके बाद चूहे की दिल्ली-यात्रा, अंगद-कुदान; कर्रे करो या कुर्र, काला-काला एक न छोड़ूंगा; पढ़क्कू की सूझ; मामा के लिए आम, और झब्ब का परलोक सुधार शीर्षक रचनाएँ हैं।

इन रचनाओं में बाल-हृदय को रिझाने की बड़ी शक्तिशाली प्रवृत्ति है। सुन्दर सरल और बालोपयोगी भावनाओं के साथ-साथ राष्ट्र-प्रेम को भी इन रचनाओं में स्थान मिला है। 'बिल्ली की दिल्ली यात्रा' में देखिए :—

> अब न रहे अंगरेज, देश पर अपना ही काबू है,
> पहले जहाँ लाट साहब थे, वहाँ आज 'बाबू' है।

यहाँ बाबू से तात्पर्य राजेन्द्र बाबू से है। दिनकरजी हिन्दी के बड़े कुशल कवि हैं। क्या बाल साहित्य और क्या प्रौढ़-साहित्य सर्वत्र उनकी भावना देश-प्रेम से ओत-प्रोत रहती है। इन रचनाओं मे भी उन्होंने अपनी उसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। हास्य और विनोद तो प्रायः उनकी इस प्रत्येक रचना में है। वास्तव में यही बाल-हृदय का आकर्षण-केन्द्र है। दिनकरजी बाल-हृदय के अच्छे पारखी है। उनके प्रौढ़-साहित्य के समान ही उनका बाल-साहित्य लोक-प्रिय है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रेमी बालकों मे इस कविता-पुस्तक का भी अच्छा प्रचार होगा।

—राजेन्द्रसिंह गौड़ (एम० ए०)

विचार-वल्लरी—सम्पादक—श्री जैनेन्द्रकुमार, प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लि०, बम्बई। पृष्ठ संख्या २००, मूल्य दो रुपये आठ आने।

आधुनिक शिक्षा-जगत की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि आज की शिक्षा विद्या—विनय नहीं देती। वह मूलतः नैतिक न हो कर बौद्धिक है अतः आधुनिक जीवन की जटिलता और विशृंखलता दूर करने मे आज की विद्या से कोई योग नहीं मिल पाता। जीवन में सामञ्जस्य और सन्तुलन स्थापित करना ही आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है। इस समस्या को हल करने के लिए सबसे पहले आज के विद्यार्थियों और पाठकों को ऐसी अध्ययन-सामग्री दी जाय जिससे उनमें श्रद्धा, शालीनता, नैतिकता और विनय आदि वृत्तियों का विकास हो और उनमे स्पर्द्धा की वृत्तियाँ न पनपें। श्री जैनेन्द्रकुमार द्वारा संगृहीत इन निबन्धों का प्रकाशन इसी दिशा में एक सुन्दर प्रयत्न है। इस संग्रह में महात्मा गांधी, डाक्टर भगवानदास, आचार्य बिनोबा भावे, आचार्य काका कालेलकर जैसे सत्पुरुषों, आचार्य नरेन्द्रदेव, डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा माखनलाल चतुर्वेदी जैसे विद्वान् चिन्तकों और साहित्यकारों तथा हिन्दी साहित्य-क्षेत्र की प्राचीन एवं नवीन कतिपय प्रतिभाओं की कृतियाँ एकत्र की गयी है। स्वामी विवेकानन्द तथा बंकिम बाबू जैसे हिन्दी से इतर भाषा-भाषी महानुभावों के निबन्धों का भी समावेश इस संग्रह

में किया गया है। इस प्रकार इस सामग्री की उत्कृष्टता, प्रभविष्णुता और सदाशयता निर्विवाद हैं। इसके अतिरिक्त इन कृतियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने स्रष्टाओं की जीवनानुभूतियों के सहज स्फुरण के रूप में बड़ी ही शक्तिमयी हैं। इनकी भाषा श्रमसाध्य न हो कर स्वाभाविक है। इसीलिए ये निबन्ध सरल और बोधगम्य हैं। इनके प्रतिपादन में बड़ी प्रसादात्मकता है जो निबन्धों का प्रथम गुण होना चाहिए।

यह संग्रह उत्तम निबन्धों का सुन्दर चयन है, किन्तु कुछ साधारण बातें खटकती हैं। कतिपय निबन्ध कुछ-कुछ उपदेशात्मक होने के नाते साधारण शुष्क तथा विचार-वितर्कों की गहनता के कारण कहीं-कहीं बोझीले हो गये हैं। विषय की प्रकृति और आत्मा के अनुरूप भाषा भी कहीं-कही पण्डिताऊ और भारी हो गयी है। पुस्तक का साहित्यिक से अधिक नैतिक महत्व है। नैतिकता के प्रति आग्रह इस पुस्तक का उद्देश्य भी तो है।

जीवन को सामर्थ्य एवं पौरुषमय बनाने की प्रेरणा इन निबन्धों से मिलती है, यही इस संग्रह का लक्ष्य और महत्व है। यह पुस्तक विद्यार्थियों तथा तरुणों के लिए अधिक उपादेय है। इन निबन्धों के चयन के लिए जैनेन्द्रजी तथा इनके प्रकाशन के लिए राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड बधाई के पात्र हैं।

संकल्प---(कविता-संग्रह)---रचयिता---श्री सत्यनारायण द्विवेदी, प्रकाशक---ए० बी० वर्मा, शारदा प्रेस, कटरा रोड, इलाहाबाद २, मूल्य १)

'सकल्प' श्री सत्यनारायण द्विवेदी की इक्कीस रचनाओं का संग्रह है। इन रचनाओं में वर्तमान भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विकृतियों और जटिलताओं के प्रति विद्रोह और आक्रोश की भावना के अतिरिक्त कवि का व्यक्तित्व उभरता हुआ दिखाई देता है। कवि की अनुभूतियाँ सामाजिक सत्यो के प्रति सजग है, किन्तु उन्हें मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति देने में वह असफल रहा है। उसका आक्रोश उसके मर्म से निकल कर सीधे पाठक के मर्म में प्रविष्ट न हो कर "निर्मम हत्यारों" तथा "धन के ठीकेदारों" जैसे शब्दों में घुट कर रह जाता है। भाषा में ओज और प्रवाह तो मिलता है, किन्तु भावों का भार वहन करने में शब्दावलियाँ सर्वथा दुर्बल हैं। अनुभूतियों का बोझ पटक कर वे आगे निकल जाती हैं।

फिर भी 'संकल्प' एक सुन्दर कवितासंग्रह है। इसमें संगृहीत कतिपय कविताएँ मार्मिक, सबल और प्रभावपूर्ण हैं। इनमें मानवता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति पूरी आस्था और विश्वास है। कवि का यह प्रयत्न सराहनीय है। आशा है, कवि नई अभिव्यक्तियाँ अपना कर व्यक्ति और समूह के संघर्ष तथा नवीन सामञ्जस्य को और अधिक सौंदर्य प्रदान कर सकेगा।

---श्री हरि, (एम० ए०)

सन्तति-नियमन—डॉ० मेरी स्टोप्स की Wise parenthood पुस्तक का हिन्दी अनुवाद, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन लिमि० बम्बई, पृष्ठ संख्या ११३, मूल्य १॥) मात्र

आजकल भारत में जिस प्रकार मनुष्य संख्या बढ़ रही है और अन्न की कमी एवं महंगी से जिस प्रकार जनता के भरण-पोषण की समस्या विकट होती जा रही है, उससे देश के चिन्तकों का ध्यान इस ओर जा रहा है कि जनसंख्या की वृद्धि रोकने के लिए सन्तति-नियमन का प्रयोग किया जाय। इस कार्य के लिए प्राचीन और स्वाभाविक उपाय तो यही है कि पति-पत्नी ब्रह्मचर्यपूर्वक संयमी जीवनक्रम का पालन करें और उचित समय पर (एक सन्तान के बाद कम से कम ३ से ५ वर्ष बाद तक) स्वस्थ, सुदृढ़ और दीर्घजीवी सन्तान की उत्पत्ति का अवसर आने दें। किन्तु जब सिनेमाओं में लोगों की कामुक प्रवत्तियों को अबाध रूप से उभाड़ा जाता है और जब तक सरकार स्वयं नैतिक प्रवृत्तियों के प्रचारार्थ उद्योगशील न हो तब तक इस भौतिक सुखवाद और इन्द्रिय-परायणता के समय में इस बात के लिए लोगों की तैयारी होना कठिन है। अतएव इस वैज्ञानिक युग में उन उपायों की अपेक्षा की जाती है जिनसे इन्द्रिय-सुख में व्याघात न पहुँचे और सन्तति-नियमन का काम भी हो सके। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से एक स्त्री चिकित्सिका डाक्टर मेरी स्टोप्स की लिखी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद रूप तैयार हुई है।

यदि कोई स्त्री बीमार है और अधिक सन्तानोत्पादन नहीं चाहती या बीमारी के कारण प्रसवकाल में जीवन का सन्देह है, अथवा अधिक सन्तान होने के पश्चात् कोई स्त्री नहीं चाहती कि उसे और बच्चे हों, साथ ही पति-पत्नी सम्बन्ध भी आवश्यकतानुसार एवं स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त जारी रहे तो ऐसी दशा में इस उपाय की उपयोगिता स्वीकार की जा सकती है। किन्तु ऐसे साहित्य के प्रचार से यह खटका भी कम नहीं है कि इस साहित्य और इन उपायों का दुर्व्यवहार उन लोगों के द्वारा भी हो, जो चाहते हैं कि अनैतिक और व्यभिचार की सीमा का इन्द्रिय सुख चलता रहे और उनके कलंकित कृत्यों के परिणाम का भंडाफोड समाज के सामने न होने पावे। लेखिका ने भी अपने इस कटु सत्य अनुभव का उल्लेख किया है कि "दुख की बात है और यह सच है कि अकसर विवाह के पवित्र बंधन में बँधे लोगों की अपेक्षा उन अभद्र लोगों ने अपने यौन सम्बन्ध के आनन्दपूर्ण चमत्कार को कायम रखा है, जो उसके बाहर अपने प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते आये हैं।" इसमें हानिकारक विधियों के बदले कुछ ऐसी विधियों, छोटी टोपी (चेकपेसरी) और तैल बत्ती (रेशियल) एवं स्पंज विधि का वर्णन किया गया है जिसे स्त्रियां डाक्टर की सहायता से ही नहीं स्वतः भी कर सकें। कुछ प्रचलित विधियों की इसमें आलोचना भी की गयी है। ऐसी पुस्तक का बहुल-प्रचार समाज के लिए लाभकर होगा या नहीं, इस सम्बन्ध में आलोचक स्वयं सन्दिग्ध है। अतएव यही कहा जा सकता है कि जो लोग ऐसी विधि का प्रयोग करना चाहते हैं वे पुस्तक मँगा कर पढ़ें और भविष्य कर्तव्य निर्धारित करें।

—जगन्नाथप्रसाद शुक्ल
(आयुर्वेद पंचानन)

हिन्दी कहानी और कहानीकार—लेखक—श्री वासुदेव, एम० ए०, प्रकाशक वाणी-विहार, बड़ा गणेश, बनारस, पृष्ठ संख्या २१७, मूल्य ३॥)

इसमें ६६ पृष्ठों में कहानी की परिभाषा, आधुनिक कहानी का स्वरूप, सफल और श्रेष्ठ कहानी, एक कसौटी, प्राचीन और आधुनिक कहानी, हिन्दी कहानी का विकास, हिन्दी कहानीकारों का वर्गीकरण तथा हिन्दी में कहानी-संग्रह, इन सात शीर्षकों के अन्तर्गत इनके सम्बन्ध में लेखक ने अनेक अन्य विद्वानों के तथा स्वयं अपने विचार प्रकट किये हैं। शेष पृष्ठों में सर्वश्री प्रसाद, गुलेरी, प्रेमचन्द, जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, विश्वम्भरनाथ कौशिक, सुदर्शन, राय कृष्णदास और महादेवी वर्मा के सामान्य परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व, हिन्दी साहित्य में और कहानी-साहित्य में उनके स्थान तथा उनकी कहानी-कला के बारे में लिखा गया है।

एडगन एलनपो, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानी-परिभाषाएं देते हुए लेखक ने अपने विचारों को भी बतलाया है। कहानीमें घटनाओं के समावेश का प्रश्न तथा कहानी का उद्देश्य रस का परिपाक है या नहीं, यह प्रश्न लेकर लेखक ने माना है कि घटना या घटनाओं के आधार पर ही कहानी का भवन खड़ा किया जाता है और कहानी में घटना की या चरित्र की या इन दोनों की प्रधानता होगी। 'सफल और श्रेष्ठ कहानी—एक कसौटी, में कहानी के उद्देश्य पर और भी विशद रूप से लिखा गया है। इसी प्रकार उपन्यास और कहानी के अन्तर तथा प्राचीन कथा साहित्य और आधुनिक कथा-साहित्य की विभिन्नताओं को भली भाति दिखलाया गया है। 'कहानी के विकास' पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने कहा है—'हमारे साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा-भाषियों के बीच यह व्यर्थ का भ्रम फैला रखा है कि हमारा साहित्य बँगला का प्रभाव और प्रभुत्व स्वीकार करता रहा है। आज हिन्दी-साहित्य का इतिहास नये ढंग से लिखने की आवश्यकता है।' इसके साथ ही बँगला के तथा युरोपीय भाषाओं के कहानी-लेखकों से जो कुछ सीखा गया उस पर विचार किया गया है।

कहानीकारों के वर्गीकरण में प्रसाद, प्रेमचन्द, उग्र, जैनेन्द्र और यशपाल के 'स्कूलों' की विशेषताओं और उनके लेखकों के बारे में बतला कर अन्त में कहानीकारों का ध्यान भारतीय जीवन से सम्बद्ध अनेक प्रश्नों —जैसे स्त्रियों के अधिकार, शिक्षा और सैनिक, मुनाफाखोरी आदि—की ओर भी खींचा गया है।

विभिन्न दृष्टिकोणों और विभिन्न विषयों के आधार पर किये हुए कहानी-संग्रहों के सम्बन्ध में विचार करते हुए लेखक ने कहा है—'विकास की जिन स्पष्ट रेखाओं पर हमारा साहित्य अग्रसर होता गया है उसी के आधार पर कहानियों का संग्रह होना चाहिए। लेकिन हिन्दी में इस दृष्टि का अभाव ही है।' श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के इस कथन को कि 'हिन्दी की कौन बीस कहानियां काल का आघात सह सकेंगी' कहानी-संग्रहकर्त्ताओं को 'चुनौती देनेवाला' माना गया है। 'वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव भी कहानी-संग्रहकर्त्ताओं में है।'

लेखकों का जो सामान्य परिचय दिया गया है और उनके व्यक्तित्व के बारे में जो कुछ लिखा गया है वह यथेष्ट आकर्षक है। प्रसाद के कहानी-साहित्य पर लिखते हुए कहा गया है, 'उनकी कहानियों में विकास की रेखाएँ बहुत स्पष्ट हैं; पारखियों की आवश्यकता है।' 'प्रेमचन्द का साहित्य में स्थान' का पहला वाक्य है—हिन्दी में कहानी-साहित्य का वास्तविक प्रारम्भ प्रेमचन्द से होता है। प्रेमचन्द को लेखक ने 'मूक जनता का प्रथम साहित्यकार' भी कहा है। साथ ही लेखक का कहना है कि 'कथानक का समुचित निर्वाह करने में प्रेमचन्द को सफलता नहीं मिली' और 'प्रेमचन्द, प्रधान रूप से, कथाकार न हो कर चरित्रों के चितेरा हैं।' हिन्दी के प्रारम्भिक कहानी-काल में प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन को 'वृहत्त्रयी कहानीकार' कहा गया है। जैनेन्द्र जी के सामाजिक जीवन के 'निम्न भाग में रेंगने' का, ऐसी ऊंची चोटी के लेखक की आर्थिक अवस्था संतोषप्रद न होने का वर्णन करते हुए कहा गया है—'हमारे अधिकांश लेखकों का जीवन जैनेन्द्र जैसा होता है।' उनकी साहित्यिक विशेषता को बतलाते हुए लिखा है—'ये न यशपाल-पहाड़ी हैं और न प्रेमचन्द-सुदर्शन। ये बाहर की घटनाओं को मानव-मन के अन्दर देखना चाहते हैं।' और यह कि हिन्दी में मनोवैज्ञानिक साहित्य के श्रीगणेश का पथ-प्रदर्शन करने का श्रेय जैनेन्द्र को ही दिया जाना चाहिए। अज्ञेय जी 'जैनेन्द्र स्कूल' के कहानीकार हैं पर कई दृष्टियों से उनसे बहुत आगे निकल गये हैं, यह लेखक ने दिखलाया है। श्री भगवतीचरण वर्मा कहानी लिखने के पहले कवि थे, अतः उनकी कुछ कविताओं को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि इनका साहित्य 'छायावाद और प्रगतिवाद की संधि पर खड़ा है।' राय कृष्णदास के बारे में लिखा है—'रायसाहब सर्वप्रथम एक भारतीय कलाकार हैं, फिर और कुछ।' और यह कि, 'रायसाहब प्रसाद-स्कूल के एकमात्र कहानीकार हैं।' तथा उन्होंने 'प्रथम बार कहानी-कला को कला का वास्तक रूप प्रदान किया।' ऐसे ही अन्य लेखकों की विशेषताएं लिखकर उन पर यथेष्ट विचार प्रकट किये गये हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा के कुछ संस्मरण कहानी की परिधि में लिए जा सकते हैं, इसलिए इन्हें भी कहानीकारों में रखा गया है और इनके संस्मरणों की विशेष देन पर विचार किया गया है। पुस्तक विद्यार्थियों के काम की तो विशेषरूप से है ही पर अन्य लोगों के लिए भी इसमें विचार की यथेष्ट सामग्री है।

—विजय वर्मा

हमारा सहयोगी साहित्य

नागरी प्रचारिणी पत्रिका—(केशव स्मृति अंक) प्रका०—ना० प्र० सभा, काशी मूल्य ५)

स्व० आचार्य पं० केशवप्रसाद मिश्र का जीवन और कृतित्व जितना रहा वह अनवद्य और अकलुष रहा। वह प्रारंभ में धूल भरे हीरे की भांति रहे और अन्त में विराट् ज्ञान-सत्र के महान् अध्वर्यु बन कर बिदा हुए। ऐसे पवित्र ज्ञान-साधक की स्मृति में सहयोगिनी नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने 'केशव स्मृति-अंक' निकाल कर अभिनन्दनीय कार्य किया है।

प्रस्तुत अंक में लेख (साहित्यिक), संकलन (आचार्य मिश्र की रचनाओं का) और संस्मरण श्रद्धांजलियाँ ये तीन विभाग हैं। लेख विभाग में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, राय कृष्णदास, मि० ला० माथुर, विनायक वामन करवेलकर के लेख अनुशीलन प्रधान हैं। ये लेख अपने विषय और पक्ष के समर्थन में बहुत सफल और प्रामाणिक हैं।

संकलन भाग के निबंध, भाषण और समालोचना हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा तथा अन्वेषकों को अध्ययन के सूत्र प्रदान करती है। संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ भाग में राय कृष्णदास, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी और पं० रामनारायण मिश्र के संस्मरण विशेष स्थान और आशय रखते है। अंक सुन्दर और संग्रहणीय है।

सर्वोदय—(मासिक) सम्पादक, आचार्य विनोबा भावे और दादा धर्माधिकारी, प्रकाशक सर्वसेवा संघ, वर्धा; वार्षिक मूल्य आठ रुपये।

सर्वोदय के चतुर्थ वर्ष का यह प्रथम अंक (१५ अगस्त) हमारे सामने है। समाज के व्यापक और श्रेय-प्रेय-मूलक सिद्धांतों का प्रसारक सर्वोदय मासिक पत्र है। यह पत्र विचार-प्रधान है—जीवन-निर्माण और आत्म-निरीक्षण संबंधी विचारों का ही प्रतिपादन इस पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्तुत अंक में आचार्य विनोबा ने 'तुलसी का पावन स्मरण' शीर्षक लेख में गोस्वामी तुलसीदासजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपने जो विचार प्रकट किये हैं वे नितांत मौलिक, अनवद्य और तुलनात्मक सन्त साहित्य की अम्लान आलोचना है। वाल्मीकि के बाद जितने भारतीय कवियों ने श्रीराम कथा लिखी हैं उन सबमें विनोबाजी की दृष्टि में गो० तुलसीदासजी अद्वितीय यशस्वी सिद्ध हुए हैं।

एक दूसरे 'शांति की अजहद कोशिश' शीर्षक विचार में आचार्य विनोबा भावे ने देश की वर्त्तमान आर्थिक परिस्थिति पर विचार प्रकट करते हुए कांग्रेस और कांग्रेस सरकार की मोह-निद्रा और मद-होशी दूर करने का प्रयत्न किया है। दोनों लेख पठनीय और समय पड़ने पर सदुपयोग में लाने के लिए संग्रहणीय हैं। इनके अतिरिक्त दादा धर्माधिकारी, श्री दामोदरदास मूंदड़ा और धीरेन्द्र मजूमदार के संस्मरणप्रधान विचार पठनीय और मननीय हैं। इस अंक के सभी लेखों में नवीनता, मौलिकता, और चिरस्थायी साहित्य है।

भक्तभारत—(भक्तिअंक) संपादक—श्री रामदास शास्त्री, प्रकाशक, चार सम्प्रदाय आश्रम वृन्दावन। वार्षिक ४)

'भक्ति' एक ऐसा प्राणद विषय है जिसे लेकर उच्चकोटि का संग्रहणीय और स्वस्थ साहित्य प्रस्तुत किया जा सकता है। 'भक्त भारत' साम्प्रदायिक विचारधाराओं का पत्र प्रतीत होता है तथापि 'भक्ति' के विषय-विवेचन और स्पष्टीकरण में पर्याप्त उदारता है। सभी लेख पठनीय हैं। किन्तु सम्पादन-कला का अभाव है।

धर्मदूत—(बुद्ध जयंती विशेषांक) सम्पादक-भिक्षु धर्मरक्षित; प्रकाशक, महाबोधि सभा, सारनाथ, वा० मू० ३)

प्रस्तुत अंक में मुख्य ग्यारह लेख और ४ कविताएँ हैं। सभी लेख और रचनाएँ विषय और वस्तु के अनुकूल हैं किन्तु 'तथागत की जन्मभूमि' और 'नागार्जुन और उनका सुहृल्लेख' ये दो लेख संग्रह योग्य हैं।

जीवन साहित्य—(भूदान यज्ञ अंक) सम्पादक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय और श्री यशपाल जैन, प्रकाशक, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली। वार्षिक ४), इस अंक का मूल्य बारह आना।

भारतीय संस्कृति भूदान की शाश्वत परम्परा से अनुप्राणित चली आ रही है। वेद काल के उस अध्याय से जब शासन-पद्धति और कृषिकर्म का सूत्रपात होता है भूदान की महत्ता व्यापक बनती है। वामन अवतार की घटना ऐसे ही युग की हो सकती है जैसे आज संत विनोबा अपनी अहिंसक क्रांति द्वारा भूदान-ग्रहण और उसका विसर्जन एवं विनियोग कर रहे हैं। संत विनोबा का यह कार्य भारतीय धर्म और सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल ही है। उनके इस पुनीत कार्य के समर्थन और सहयोग दान में सहयोगी जीवन-साहित्य ने अपना भूदान-यज्ञ अंक निकालकर विनोबा जी के कार्यक्रम को सफल बनाने का ही उद्योग नहीं किया बल्कि एक स्वस्थ और आकर्षक लोक-साहित्य का सर्जन भी किया है।

इस अंक में 'विनोबा-व्यक्तित्व-दर्शन', 'भूदान यज्ञ—एक अध्ययन', 'भूदान यज्ञ—विनोबा दृष्टि' 'भूदान यज्ञ—लोकमत और 'विनोबा साहित्य' ये पाँच विभाग हैं।

व्यक्तित्व-दर्शन में महात्मा गांधी जैसे उत्तम पुरुष और काका कालेलकर, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० मैथिलीशरण गुप्त जैसे मनीषी कलाकारों और अन्य शब्द-शिल्पियों ने श्री विनोबा जी के जीवन, कृतित्व और निष्ठा का बहुत सुन्दर विश्लेषण किया है।

भूदान यज्ञ—एक अध्ययन और भूदान यज्ञ—विनोबा की दृष्टि, इन दोनों विभागों के अनुभवी विचारकों ने भूमि और भूमि-दान संबंधी सभी प्रकार की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सभी लेख-सामग्री उच्चकोटि की है। निःसन्देह यह अंक संग्रह और पढ़ने के योग्य है।

सम्पादकीय

अर्चना के फूल

न केवल हिन्दी वरं सम्पूर्ण भारतीय हिंदू समाज तुलसी का ऋणी है जिसने मध्ययुग की विक्षिप्त एवं विकल जीवन-सुषुप्ति के बीच आदर्शों की प्रेरणा का ही दान हमें नहीं किया बल्कि एक सुगठित एवं संस्कृत समाज का चित्र भी हमारे सामने रखा। इसलिए उस महात्मा का स्मरण हम जब भी करते है, पावन होते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी में संत-साहित्य के विशेषज्ञ श्री परशुराम चतुर्वेदी की अध्यक्षता में, गतवर्ष की भाँति ही इस वर्ष तुलसी महोत्सव बड़े उत्साह से मनाया। सम्मेलन के निवेदन एवं अनुरोध पर भारत के कोने-कोने में यह उत्सव मनाया गया। प्रयाग के कार्यक्रम का कुछ अंश भारतीय आकाशवाणी की प्रयाग शाखा से प्रसारित भी किया गया। इस समारोह में प्रायः सभी प्रान्तों एवं भाषाओं के कवियों एवं कलाकारों ने भाग लिया और धार्मिक भेदभाव से ऊपर उठकर हिन्दू मुसलमान दोनों ने कला के इस अमर उपासक को श्रद्धाञ्जलियाँ भेंट कीं।

यह सब हुआ पर इस प्रकार वर्ष में एक बार तुलसी का स्मरण कर लेना पर्याप्त नहीं। सम्मेलन को अपने तत्त्वावधान में एक तुलसी प्रतिष्ठान (तुलसी एकेडमी) की स्थापना करनी चाहिए जिसमें तुलसी के सम्बन्ध में निरन्तर शोध, तत्सम्बन्धी रचनाओं का प्रकाशन, विभिन्न भाषाओं में तुलसी के ग्रंथों के प्रामाणिक अनुवाद आदि का कार्य सुचारु रूप से किया जा सके। उत्तर प्रदेश की सरकार सम्मेलन के ऐसे प्रयत्न का स्वागत करेगी और सहायता भी देगी, ऐसी आशा की ही जा सकती है।

इस समय हमें राजापुर के ढहते हुए तुलसी स्मारक की याद आती है। सम्मेलन तथा अन्य संस्थाओं के प्रस्ताव, आन्दोलन एवं अनुरोध पर उत्तरप्रदेशीय सरकार के मुख्यमंत्री श्री गोविन्द-वल्लभ पंत ने स्मारक की रक्षा का आश्वासन दिया है और इस सम्बन्ध में हमारे राज्यपाल श्री कन्हैयालाल मुंशी निकट भविष्य में वहाँ जाने वाले भी हैं। सरकार का छोटा से छोटा कार्य भी विलम्ब की अपेक्षा रखता है और हमें भय है कि जबतक सरकारी सहायता मिलेगी तबतक कहीं स्मारक का अन्त न हो जाय। फिर भी हम उत्तरप्रदेशीय सरकार के शुभ निश्चय पर उसका धन्यवाद करते हैं। आशा है, जनता की आशा शीघ्र पूरी होगी। इस बीच हम तुलसी की स्मृति में अर्चना के फूल अर्पित करते हैं।

गत अगस्त मास में अभिनव संस्कृति परिषद् (कलकत्ता) ने एलिस छविगृह में 'वर्षामंगल' का आयोजन किया था जिसमें मतिराम, पद्माकर, रत्नाकर, निराला, पंत और माखनलाल चतुर्वेदी के पावसगीतों का गान तथा उन्हीं के आधार पर भावनृत्य के रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

ऐसे ही सांस्कृतिक उत्सवों से राष्ट्र की वास्तविक चेतना का उद्बोधन संभव है। इसलिए हम परिषद् के आयोजन का अभिनंदन करते हैं और हिन्दी के इन श्रेष्ठ कलाकारों की स्मृति से अपने को उल्लसित पाते हैं।

हिन्दी और सरकारें

किसी देश की राष्ट्रभाषा के प्रति वहां की सरकार या सरकारों की जो निजत्वबोधक प्रवृत्ति होती है उसका एक अंश भी हम अपने देश की केन्द्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों में नहीं पाते हैं। सच पूछिए तो विदेशी शासन गया किन्तु विदेशी मनोवृत्ति और 'अंग्रेजियत' की शान आज भी वही है बल्कि प्रादेशिक सरकारों में कहीं-कहीं बढ़ गयी है। प्रश्न बहुत सीधा है कि यदि भारत एक राष्ट्र है तो उसकी अपनी राष्ट्रभाषा की जगह एक विदेशी भाषा को आज भी क्यों संरक्षण दिया जा रहा है। यह राष्ट्र के अपने व्यक्तित्व का प्रश्न है और प्रत्येक भारतवासी को, इस दृष्टि से, हार्दिक वेदना होनी चाहिए। जो मनोवृत्ति एक विदेशी भाषा को सहन कर सकती है किन्तु अपने ही देश की एक भाषा के सम्बन्ध में अवाञ्छनीय नारों की सृष्टि कर सकती है वह निश्चित रूप से अराष्ट्रीय मनोवृत्ति है। हमें जो कुछ पता है उससे तो हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि विदेशी दूतावास हिन्दी को अपनाने में हमारी सरकार के विभागों की अपेक्षा अधिक तत्पर एवं प्रयत्नशील है। कुछ ही दिन पूर्व राष्ट्रभाषा प्रचार परिषद् के पुरस्कार वितरणोत्सव पर श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित ने बताया कि वह जब रूस में भारतीय राजदूत होकर मास्को गयीं तो अपना हिन्दी में लिखा हुआ प्रत्ययपत्र उन्होंने वहाँ के वैदेशिक विभाग में भेजा। दस मिनट बाद ही फोन पर कहा गया कि इस प्रत्ययपत्र की हिन्दी अशुद्ध है, अध्यक्ष को सभासद लिखा गया है। श्रीमती पंडित से यह भी कहा गया कि वह रूस मे केवल रूसी भाषा या हिन्दी दो ही भाषाओं में बात कर सकेंगी और जब श्रीमती पंडित ने हिन्दी में बोलना स्वीकार किया तो तुरन्त उनके पास दो दुभाषिए भेज दिये गये।

जहाँ तक हम जानते है, यह वक्तव्य भी अधूरा है। आरंभ में प्रत्ययपत्र हिन्दी में नहीं, अंग्रेजी में उपस्थित किया गया किन्तु रूसी वैदेशिक विभाग की आपत्ति पर हिन्दी में भेजा गया। इसी प्रकार चीनी दूतावास का बोर्ड उन लोगों की आपत्ति पर अंग्रेजी से हिन्दी एवं चीनी में बदला गया।

बात छोटी है पर यह जीवन के दो दृष्टिकोणों को व्यक्त करती है। स्वतंत्र राष्ट्रों को **'अपनी'** भाषा पर गर्व होता है पर हमारे देश का शासन जिन लोगों के हाथ है वे भारत की अपनी वाणी की हीनता का ही प्रकाशन यदा-कदा किया करते है। यह ठीक है कि इधर केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी ग्रंथकारो को कुछ पुरस्कार देने की घोषणा की है तथा विभिन्न राज्य सरकारें भी कच्छपगति से इधर अग्रसर हो रही हैं किन्तु प्रश्न वस्तुतः रुपयों का नहीं है, बल्कि मनोवृत्ति का है। जब तक मनोवृत्ति **'भारतीय'** नहीं होती, सब प्रयत्न आत्माशून्य शरीर की भाँति निर्जीव हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडमी

जब देश पराधीन था और हमारा शासन जन-प्रतिनिधियों द्वारा नहीं, विदेशी सरकार के कृपापात्रों द्वारा चलाया जाता था तब उत्तरप्रदेश (तब संयुक्त प्रान्त) में हिन्दुस्तानी एकेडमी की सृष्टि हुई थी। एक अजीब-सी संस्था। परियों की कथाओं में जैसे हम लोग पढ़ते हैं कि सिर आदमी का एवं धड़ किसी नाग या और जानवर का होता था। यह एकेडमी कुछ वैसी ही थी। दो जबानों मे एक साथ बोलने वाली। पता नहीं सिर जानवर का था, या धड़। उसके बाद इसको समाप्त कर देने या इसका पुनर्गठन नवीन परिस्थिति में करने का प्रस्ताव भी आया पर हमारे राज्य की सरकार का शिक्षा विभाग आज तक इस सम्बन्ध में कोई निर्णीत एवं स्पष्ट योजना नहीं बना सका। या तो हिन्दुस्तानी एकेडमी को 'हिन्दी प्रतिष्ठान' के रूप में बदलकर उसे शोध एवं साहित्य-निर्माण का पवित्र केन्द्र बना देना चाहिए या उसे समाप्त करना चाहिए। सबसे हास्यास्पद बात तो यह है कि जब हमारे राज्य की राजभाषा हिन्दी है तब सरकार द्वारा 'हिन्दुस्तानी' का पोषण क्यों किया जा रहा है ? हमें आशा है, हमारे शिक्षामंत्री, जो अपनी साहसिक प्रवृत्तियों के लिए विख्यात हैं, इस ओर भी ध्यान देंगे।

आत्मयोगी किशोरलाल भाई की स्मृति में

'हरिजन' पत्रों के संपादक और गांधीजी के एक बहुत पुराने एवं विश्वसनीय सहयोगी किशोरलाल भाई के देहावसान से हमारे बीच जलती हुई ज्ञान की एक दीप-शिखा बुझ गयी है। गांधीजी के तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन एवं विवेचन उन्होंने किया था। वह ऊपर से कर्मयोगी पर अन्तर से भक्त एवं ज्ञानी थे और कदाचित् ही गांधीजी के सहयोगियों में दूसरा कोई ऐसा हो जो उनकी जैसी तटस्थ वृत्ति से जगत् को देखने की शक्ति रखता हो। पद, प्रतिष्ठा, पक्षपात किसी प्रकार की आसक्ति उनमें नहीं रह गयी थी। गांधीजी सेवा संघ के अध्यक्ष होते हुए भी उसके विघटन की स्पष्ट सम्मति देनेवाले वही थे। वह अन्तःस्थ थे एवं किसी कार्य की महत्ता उसके प्रसार से नहीं उसकी श्रेयस्कर प्रवृत्तियों से नापते थे। गांधीजी के सिद्धान्तों में आवश्यक संशोधन करने का साहस उन्हीं में था और बापू कहा करते थे कि किशोरलाल तो मेरे समानान्तर एक तत्त्वज्ञान खड़ा कर रहा है।

दमे से घुनी छाती और कुबड़ा नाटा जीर्ण शरीर लिये वह इतना काम करते थे कि आश्चर्य होता था। कागभुशुंडि के समान (इस उपनाम से वह कभी-कभी लिखते भी थे) सचमुच वह ऊपर से अटपटे पर अन्दर से ज्ञानामृत से भरे हुए थे और घटनाओं एवं पदार्थों की बहुत गहराई में पैठने की उनकी वृत्ति थी।

आरम्भ से ही उनमें आध्यात्मिकता का जो बीज था वह अपने गुरुदेव एवं गांधीजी के सम्पर्क से बढ़ते हुए पूर्ण वृक्ष के रूप में विकसित हो गया था। महादेव भाई, बा, ठक्कर बापा एवं सरदार की मृत्यु से वह जीवन के प्रति अत्यन्त विरक्त-से हो गये थे और अन्तिम दिनों में जो कुछ करते थे—उसमें केवल संस्कार एवं शरीराभ्यास मात्र था; वह इन सब के प्रति अनासक्त हो गये थे। देहावसान का आभास भी उन्हें मिल गया था क्योंकि जुलाई में उनकी एक आत्मीया की मृत्यु के बाद उन्होंने लिखा था—"मुझे आशा है कि अब संसार से बिदा लेने की मेरी पारी है।" और मृत्यु के कुछ ही पूर्व (९ अगस्त को) उन्होंने स्पष्ट लिखा था—

"मैं अपने जीवन की अन्तिम छोर पर पहुँच गया हूँ, और सांसारिक बातों में मेरी दिलचस्पी जाती रही है। मैं जिस प्रकार कड़ी भाषा में लेखादि लिखता हूँ, उससे पाठक यह सोचते होंगे कि यद्यपि मेरी क्रियाशक्ति क्षीण होती जाती है, मेरी दिलचस्पी वैसी ही बनी हुई है। परन्तु मैं समझता हूँ कि इस विरोधाभास का कारण जीवन-व्यापी अभ्यास एवं बौद्धिकता मात्र है। अन्तर से मैं सम्पूर्ण कर्मों के प्रति उदासीन हो गया हूँ और सबसे अलग होना चाहता हूँ।"

इन पंक्तियों के लेखक एवं उसके कुटुम्बियों पर उनका बड़ा स्नेह था और जीवन की संशयग्रस्त घड़ियों में मैंने किशोरलाल भाई से बहुत प्रेरणा एवं प्रकाश प्राप्त किया है। उनके उठ जानेसे हम एक ऐसे प्रकाश से हीन हो गये हैं जो गांधीजी के बाद हमारा मार्गदर्शन करता था। हम उनकी साध्वी पत्नी गोमती बहिन एवं उनके कुटुम्बियों के दुःख में उनके साथ हैं।

श्री दिनकर जी का दीक्षांत भाषण

गत ३१ अगस्त १९५२ को बंबई प्रान्तीय राष्ट्रभाषा के छठे पदवीदान-समारोह के अवसर पर श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर' ने जो दीक्षान्त भाषण दिया है उसमें राष्ट्रभाषा के संघर्षपूर्ण इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन्होंने कहा—"राष्ट्रभाषा का प्रेम मात्र भावना पर ही अवलंबित नहीं है। गांधीजी केवल भावना से हिलने वाले जीव न थे और न केवल भावना-शमन के लिए उन्होंने हिन्दी-प्रचार को अपने कार्यक्रम में इतना ऊँचा स्थान दिया था। असली बात यह है कि जब तक हुकूमत का फरमान लिखने वाली कलम अंगरेजी पर रीझे हुए भूरे साहबों के हाथ में रहेगी, तब तक जनता को भी अपना पूरा हक हासिल न होगा। जनता

और सरकार के बीच जो दीवारें खड़ी हैं उनमें से एक बड़ी दीवार अंगरेजी का सहारा लिए हुए है। जब तक यह दीवार नहीं टूटती और देश के शासक जनता की बोली अर्थात् राष्ट्रभाषा या प्रान्तीय भाषाओं में सोचना, लिखना और बात करना शुरू नहीं करते तबतक हम प्रजासत्ता को वह सजीव रूप नहीं दे सकेंगे जिसमें जनता की प्रत्येक इच्छा सरकार के हृदय में धड़कन देती है और सरकार की प्रत्येक कठिनाई जनता की शिराओं में ध्वनित होती है। देश की जनभाषा के विरुद्ध चलने वाला षड्यंत्र असल में जनता के विरुद्ध षड्यंत्र है। शासन यंत्र के चालकों ने जनभाषा के विरुद्ध उदासीनता की जो नीति अपनायी है उसका मुख्य कारण यह नहीं है कि जनभाषा में राज-काज शुरू कर देने से यह देश डूब जायगा, बल्कि यह कि अंगरेजी के हटाने से शासन के केन्द्रों में वे लोग कमजोर पड़ जायेंगे जिनकी वर्तमान सुखपूर्ण स्थिति अंगरेजी के ज्ञान पर निर्भर करती है!"

आगे आपने कला और विज्ञान के संबंध में विचार प्रगट करते हुए कहा—"जैसे ज्ञान का संशोधन और परिष्कार विज्ञान के प्रयोगों द्वारा होता है, उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव का परिष्कार कलाओं द्वारा किया जाता है। केवल ज्ञान की उन्नति और परिष्कार को अपना ध्येय बना लेने के कारण मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ बढ़ तो बहुत गयी हैं लेकिन कलाओं की उपेक्षा कर देने से हमें उनकी केवल दाहकता ही नसीब होती है। कला-हीनता मनुष्य को जड़ बना देती है और सचमुच ही आज का मनुष्य चारों ओर से अपनी ही जड़ता का शिकार हो रहा है। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक हो जाता है कि मानव समाज में अब भी जो मुट्ठी-भर चैतन्य व्यक्ति मौजूद हैं, वे जड़ता के इस भयंकर अभियान का मुकाबिला करें।"

श्री 'दिनकरजी' के उपयुक्त विचारों में एक ऐसा तथ्य है जो आज के साहित्यिक समाज और मानव-समाज को सोचने-समझने के लिए प्रबुद्ध करता है। आज के हमारे समाज में ज्ञान और भावना का असन्तुलन नहीं है यही कारण है कि अर्थकरी और परमार्थकरी समस्याओं के हल करने में हमें संघर्ष करना पड़ रहा है। हिन्दी के विरुद्ध पुनः आन्दोलन करना, उसे अपदस्थ करने की चेष्टा करना अनैतिकता और अराष्ट्रीयता है। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा होने के कारण आसेतु हिमालय सबकी भाषा है। जिस प्रकार उत्तर भारत वाले हिन्दी के बान्धव हैं उसी प्रकार दक्षिण भारत के निवासी भी हिन्दी के अभिभावक हैं। हिन्दी की एक विशेषता है कि जहाँ वह जाती है अपना परिवार बना लेती है। दक्षिण में हिन्दी लेखकों की कमी नहीं है। दो प्रकार की हिन्दी कभी नहीं रही। भाषा और व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी एक और अभिन्न है।

श्री दिनकरजी के शब्दों में मानवसमाज जड़ीभूत होता जा रहा है। जड़ और चेतन (विज्ञान और कला) का संघर्ष व्यापक बनता जा रहा है। इस संघर्ष से मानव-संस्कृति संकटापन्न स्थिति में है। इसलिए आवश्यकता है कि बुद्धिवादी व्यक्ति जड़-चेतन के इस संघर्ष में अपने को तटस्थ न समझकर चेतन के व्यूह को सुदृढ़ बनावें।

पत्रिका की वर्ष-समाप्ति

इस अंक से 'सम्मेलन पत्रिका' का यह वर्ष समाप्त होता है। वर्ष के उत्तरार्द्ध से पत्रिका का सम्पादन भार हमें प्रदान किया गया। हमें हर्ष और सन्तोष है, कि मनीषी लेखकों के सहयोग और अनुग्रह से हमें पत्रिका को सुन्दर, आकर्षक, पाठनीय और संग्रहणीय बनाने में उत्तरोत्तर सफलता मिली है। हम अपने विज्ञ पाठकों और विद्वान् लेखकों के प्रति आभार प्रकट करते हुए उनसे भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की आकांक्षा रखते हैं।

पत्रिका की वर्तमान गतिविधि और स्थिति को देखते हुए हमें विश्वास है कि हम भविष्य में इसे अधिक आकर्षक और सुपाठ्य बना सकेंगे।

—श्रीरामनाथ 'सुमन'

कमीशन दरों में परिवर्तन

पाठ्य पुस्तकों पर पच्चीस रुपये मूल्य से नीचे कोई कमीशन नहीं दिया जायगा। २५) रुपये से ऊपर १५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। अन्य साधारण पुस्तकों पर पुस्तकालयों तथा पुस्तक-विक्रेताओं को ५) से ऊपर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

साधारण ग्राहकों को इन पुस्तकों पर २५) से ऊपर केवल २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

सम्मेलन की परीक्षाओं के परीक्षकों तथा सम्मेलन के अधिकृत उपाधिधारियों को सामान्य पुस्तकें २५ प्रतिशत कमीशन पर दी जायँगी।

५००) से ऊपर मूल्य की पुस्तकों का रेलवे व्यय सम्मेलन वहन करेगा।

जो पुस्तक-विक्रेता वर्षभर में सम्मेलन के प्रकाशनों की १०,०००) तक की बिक्री करेंगे, उन्हें ५ प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन और ५,०००) तक के आर्डरों पर २॥) प्रतिशत अतिरिक्त कमीशन दिया जायगा।

पार्सलों पर २ प्रतिशत पैकिंग व्यय लिया जाता है।

प्रत्येक ग्राहक को अपने आर्डर के साथ पुस्तकों के मूल्य की चौथाई रकम मनीआर्डर द्वारा अग्रिम भेजना आवश्यक है।